अकबर।

जीवनचरित, ऐतिहासिक घटनायें, रोचक वृत्तान्त।

लेखक

न्द्रमौलि सुकुल, एम्० ए०, एल्० टी०।

प्रकाशक

यन प्रेस, प्रयाग।

१६१७

 मूल्य ॥)

PREFACE

While writing these pages about Akbar, the author has kept two points in view—the arrangement of leading facts and the introduction of interesting matter By the former are meant a clear relation of cause and effect, the state of India at the time, and the influence of Akbar in the country By the latter are meant details of minor historic importance

If looked at from a purely historic point of view, the book contains some matter that might be conveniently discarded Although this matter is historically true and is not of the imaginative character of the novel or of fiction, still it is not important enough to be emphasized But if looked at from the point of view of a general reader, the same matter asserts its function of giving the zest of interest to the essential historical facts, and it is not hard for a judicious reader to distinguish between the essential and the non essential

In order to give a clear idea of the circumstances of the time, to explain the subject-matter better, and to avoid monotony in reading, a rather arbitrary arrangement has been adopted by the author, which, he hopes, will not be repulsive to the reader

As the present book is intended to appeal to both the historic and the literary taste, every care has been taken that the language used should be literary and still simple

The author gratefully acknowledges help from many well-known English books on Indian history and from translations of Āīn-i-Akbari and other original historical books in Persian

Chandra Mauli Sukul

भूमिका।

इस पुस्तक मे अकबर बादशाह का वर्णन है जिसमे लेखक ने दो बातों पर ध्यान रक्खा है, एक तो महत्त्वपूर्ण घटनाओ के उल्लेख पर और दूसरे रोचक विषय के सम्मिलित करने पर। प्रथम का तात्पर्य्य यह है कि कार्य्य-कारण-सम्बन्ध स्फुट रहे, अर्थात् वर्णित विषय के देश और काल की पूर्ण दशायें प्रकट हो और उन दशाओ पर चरित-नायक का प्रभाव स्पष्ट हो। द्वितीय का तात्पर्य्य उस विस्तृत वर्णन से है जिसका महत्त्व इतिहास दृष्टि से अधिक नही है।

यदि सूक्ष्म ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जावे तो इस पुस्तक मे कुछ बातें ऐसी भी हैं जो विना किसी हानि के निकाल दी जा सकती हैं। यद्यपि इन बातो मे औपन्यासिक स्वकपोलकल्पितत्व नही है और न शेखचिल्ली की कहानियों की तरह गल्पप्रधानता है, तथापि इनका महत्त्व अधिक नहो है। विपरीत इसके यदि यही बातें साधारण पाठक की दृष्टि से देखी जावे तो महत्त्वपूर्ण बातो की रोचकता इनसे बहुत बढ जाती है। प्रतिभाशील पाठकों के लिए महत्त्व और अल्पत्व का विवरण कठिन नही है।

देशकाल की दशाओ को स्पष्टतया दिखलाने के लिए, विषय को सरलता से समझने योग्य बनाने के लिए और पढ़ने मे

रोचकता बढ़ाने के लिए विषयस्थापन का क्रम कुछ मनमाना कर दिया गया है, और आशा है कि पाठकों को इससे उद्वेग न होगा।

इस पुस्तक का उद्देश इतिहास और साहित्य दोनों हैं, अतः इसकी भाषा मे सरलता और साहित्य दोनों पर ध्यान रक्खा गया है।

लेखक ने भारतीय इतिहास की कई एक प्रसिद्ध अँगरेज़ी पुस्तकों, और आइने अकबरी तथा अन्य मौलिक फ़ारसी ग्रन्थों के अनुवाद से जो सहायता ली है उसे वह सधन्यवाद स्वीकार करता है।

चन्द्रमौलि सुकुल।

विषय-सूची ।

अबुल् फ़तेह जलालुद्दीन मुहम्मद

अकबर

[जन्म सन् १५४२ ई०; राजगद्दी सन् १५५६ ई०;
मृत्यु सन् १६०५ ई०]

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

श्रीगणेशाय नमः

अकबर

अध्याय १

पूर्वकथा, जन्म ।

मुग़लों का पूर्व स्थान तुर्किस्तान देश था । इस वंश का एक प्रधान पुरुष चंगेज़ख़ाँ नाम बड़ा शूर वीर था; परन्तु उसके उत्तराधिकारी निर्बल और साहस-रहित होते गये, यहाँ तक कि सन् १३७० ईसवी में उसके कुल का दीपक बुझ गया । चंगेज़ख़ाँ की लड़की का वंश चलता रहा जिसमें तैमूर नामक एक वीर पुरुष हुआ । तैमूर में शासन का अच्छा बल था, उसने अपने साहस से मुग़लिस्तान देश को जीत कर समरक़ंद में राजधानी स्थापित की; हिन्दुस्तान पर चढ़ाई कर के देश का बहुत बड़ा भाग अपने वश में कर लिया । सन् १४०५ ई० में एक बहुत बड़ा राज्य छोड़ कर वह मर गया ।

तैमूर के मरते ही किसी में इतना बल न रहा कि ऐसे भारी राज्य को सँभाल सके, इसलिए उसके कई भाग हो गये ।

बड़ा भाग उसके पुत्र चग़ताईख़ाँ को मिला जिसके नाम से उसके घराने वाले चग़ताई कहलाते थे। बीच मे तैमूर के प्रपौत्र अबूसईद ने उद्योग किया कि सब राज्य फिर एकत्रित हो जावे, परन्तु सन् १४६९ ई० मे शत्रुओं ने उसकी सेना को परास्त कर के उसे बध कर डाला। राज्य उसके लड़कों मे बँट गया; तीसरे पुत्र उमरशैख़ मिर्ज़ा को फ़ग़ाना देश मिला जिसकी राजधानी ख़ोकन्द थी।

उमरशैख़ ने राज्य बढ़ाने का उद्योग किया, परन्तु उसके और भाई भी इसी यत्न मे लगे थे। निदान शत्रुओं ने उसे अख़सी के क़िले मे घेर लिया; यहीं पर सन् १४९४ ई० मे उसकी अकाल मृत्यु हो गई।

उमरशैख़ का बड़ा पुत्र बाबर उस समय बाहर था, उसने अपने पिता की मृत्यु का हाल सुन कर दूसरे ही दिन अख़सी को घेर लिया; शत्रु का दल बड़ा व बलवान् था, परन्तु आपस मे फूट हो जाने के कारण परास्त हुआ। बाबर ने फ़ग़ाना का राज्य पुष्ट करना आरम्भ किया। दो ही वर्ष पीछे अवसर पाकर उसने समरक़ंद पर चढ़ाई की, परन्तु इधर शत्रुओं ने उसके राज्य पर आक्रमण कर लिया। इस दौड़ा-दौड़ी मे समरक़ंद और फ़ग़ाना दोनों उसके हाथ से जाते रहे।

एक बड़े इतिहासज्ञ, का विचार है कि चंगेज़ख़ाँ के घराने वाले बौद्ध थे और सन् १२७० ई० मे जब बराक नामक राजा राज्य करता था तो चग़ताई वंश वालों ने मुसलमानी मत ग्रहण

किया । इसके पचास साठ वर्ष के बाद बातू वंश के उज़बक नाम राजा ने अपनी प्रजा में मुसलमानी मत फैलाया । तब से ये लोग अपने नेता के नाम से अपने को उज़बक कहने लगे ।

उज़बक लोग बड़े साहसी तथा बलवान् थे, और बाबर के परम शत्रु हो गये । उस समय शैबानी उज़बक ने बाबर के लिए बैठने का स्थान भी न छोड़ा, इसलिए वीर चग़ताई (बाबर) कुछ सैनिक साथ लिये हुए इधर उधर मारा मारा फिरता था । एक दिन समरक़ंद के पास किसी गाँव के मुखिया ने उसे अपने घर में शरण दी । मुखिया की वृद्धा माता ने बाबर को भारतवर्ष की सम्पृद्धि की कथा सुनाई । तैमूर ने जब भारत पर चढ़ाई की थी तो उसके सिपाहियों ने यहाँ से लौट कर यहाँ की सम्पत्ति का हाल अपने देश-वासियों को बतलाया था, इसी जनश्रुति से वृद्धा को भी भारत का कुछ हाल मालूम था । कदाचित् बाबर ने इसी बात से भारतवर्ष पर चढ़ाई करने का निश्चय कर लिया हो ।

दो ही वर्ष में बाबर ने काबुल व कंधार का राज्य ले लिया । इसी बीच में उसका परम शत्रु शैबानीख़ाँ मर गया, इस लिए बाबर ने फिर एक बार समरक़ंद आदि पर चढ़ाई की; परन्तु वहाँ पर उसका स्थायी राज्य न जम सका । अब उसने उधर का विचार छोड़ कर भारतवर्ष पर दृष्टि डाली ।

इस समय भारतवर्ष की दशा अच्छी नहीं थी । तैमूर के आक्रमण से दिल्ली का राज्य छिन्न भिन्न हो गया था । तब से

दिल्ली के राजा सिकन्दर लोदी ने देश में कुछ अच्छा प्रबन्ध किया था, परन्तु उसके पुत्र इबराहीम लोदी ने फिर गड़बड़ी मचा दी। दिल्ली राज्य के सूबेदार स्वतन्त्र राजा बन बैठे, और बादशाह का अधिकार यथार्थ में दिल्ली के बाहर कहीं भी न रह गया।

यह समय चढ़ाई के लिए बहुत अनुकूल था, इस लिए बाबर सन् १५१९ ई० में सिन्धु-नदी उतर आया। परन्तु यहाँ कुछ काम न हो सका, क्योंकि काबुल में बलवा हो जाने के कारण बाबर को वहीं से लौटना पड़ा। इसके पश्चात् उसने तीन बार फिर चढ़ाई की, परन्तु हर बार कुछ न कुछ विघ्न हो जाता था।

सन् १५२५ ई० में बाबर ने पाँचवीं और अंतिम बार चढ़ाई की। सन् १५२६ ई० में पानीपत के मैदान में इबराहीम लोदी की सेना से युद्ध हुआ जिसमें लोदी बादशाह की मृत्यु हुई और दिल्ली का राज्य बाबर को मिला। इसी बीच में बाबर के ज्येष्ठ पुत्र हुमायूँ ने आगरा जीत लिया।

राज्य पाने पर राज्य-संबंधी कठिनाइयाँ बढ़ने लगीं। चढ़ाई के पहले मेवाड़ के राना साँगा ने बाबर को सहायता देने का वचन दिया था; क्योंकि उसे यह आशा थी कि बाबर की जीत से मुझे भी कुछ लाभ होगा। परन्तु उसकी यह आशा पूरी न हुई; इसलिए दोनों में लड़ाई ठन गई। आगरा के समीप भारी युद्ध हुआ जिसमें दोनों दलों ने जान तोड़ तोड़ कर

वीरता दिखाई। बाबर को जय और 'ग़ाज़ी' की पदवी मिली; वीर राजपूतों के शिर चढ़ा-उतार शिखर रूप मे जमाये गये।

बंगाल के लोदी पठानों ने फिर ज़ोर मारा कि बाबर को परास्त करके अपना राज्य जमावें; परन्तु मुग़ल बादशाह ने कुछ अस्त्र-बल से और कुछ बुद्धि-बल से उनको परास्त किया।

सन् १५३० ई० मे बाबर की मृत्यु हो गई और दिल्ली का राज्य उसके बड़े बेटे हुमायूँ को मिला। बाबर बड़ा वीर और उदार था और अपने मित्रो पर प्रेम रख कर उनकी यथाशक्ति सहायता करता था। परन्तु वह खरा विजेता ही था, अर्थात् सेना को उत्तेजित करके लड़ना जानता था और देश जीत सकता था। परन्तु जिस प्रकार के प्रबन्ध की आवश्यकता भारतवर्ष मे थी, वह बाबर से नहीं हो सकता था। जिस देश के वासी अधिकतर हिन्दू हों वहाँ मुसलमानी ढँग से राज्य करना कैसे सफल हो सकता था।

हिन्दुओं और प्रतिपत्ती मुसलमानों के हृदयों मे यह बात जमी हुई थी कि बाबर अन्य-देश-वासी बादशाह है; उसको हम लोगों से कोई सहानुभूति नही हो सकती। यह बात केवल बाबर ही मे नही किन्तु उसके पूर्व के प्रायः सभी मुसलमान बादशाहों मे रही, इसीसे राज्य की जड़ हिन्दुस्तान मे न जम सकी।

बाबर के चार पुत्र थे, हुमायूँ को राज्य मिला, कामरान को काबुल, क़ंधार और पंजाब की सूबेदारी मिली; अस्करी को

संबल की जागीर और हिन्दाल को मेवात (अलवर) की जागीर मिली। पहले ही पहल हुमायूँ ने साहस व वीरता दिखला कर बंगाल, मालवा और गुजरात पर चढ़ाई की. और शत्रुओ का दमन किया; परन्तु उसमे अपने पिता से भी कम प्रबन्ध-शक्ति थी, इस लिए यह देश एक ओर जीते गये और दूसरी ओर स्वतन्त्र होते गये। हुमायूँ का भाइयों से भी एका नही था; उन्होने खुलीखुला लड़ाई छेड़ दी; परन्तु हुमायूँ से निगाह बचा जाने के सिवा और कुछ न बन पड़ा; क्योंकि वह बड़ा विषयी और आत्मबल का कच्चा था; अफ़यून आदि के सेवन से उत्साह-शक्ति नष्ट हो गई थी।

अनुकूल समय पाकर बंगाल के पठानों ने फिर जोर मारा; विहार देश के जागीरदार शेरशाह लोदी ने बलवती सेना लेकर बलवा कर दिया। हुमायूँ ने इन लोगों को चुनार के क़िले से भगाया; परन्तु विश्रब्ध हो कर फिर वही पुराना अमीरी ठाट जमा दिया। तीन महीने तक किसी से भेट भी न हो सकी। शत्रु ने फिर अपनी सेना बढ़ा कर विहार, जौनपुर और बंगाल व अवध के कुछ कुछ भाग ले लिये। इसी बीच मे हुमायूँ के भाइयों ने आगरा से बलवा मचा दिया और बादशाह को बंगाल से आगरा की ओर बढ़ना पड़ा। मार्ग मे चौसा स्थान पर पठानों ने शाही सेना को अस्त-व्यस्त कर दिया।

दूसरे वर्ष, सन् १५४० ई० मे गंगा पार करके हुमायूँ ने क़न्नौज के समीप डेरा डाला, परन्तु नदी मे बाढ़ आने से उसे

डेरा हटवाना पड़ा, इसी बीच मे शेरशाह की सेना आकर टूट पड़ी और शाही सेना का सत्यानाश कर दिया। हुमायूँ अपना जीव लेकर और दिल्ली का राज्य छोड़ कर लाहौर को भागा। उसके भाई कामरान और अस्करी काबुल और ग़ज़नी को भागे। हिन्दाल की अनुमति से बादशाह ने सिन्धुदेश की तैयारी की क्योंकि वहाँ पर उसका पुराना संबंधी और साथी शाह हुसेन अरग़ून राज्य करता था। हुमायूँ की इच्छा थी कि शाहहुसेन से सहायता ले कर कश्मीर देश पर चढ़ाई करे, परन्तु उसने साफ़ इन्कार कर दिया। अब बादशाह को भोजन के लिए भी तंगी आ गई; और उसके साथी संगती एक एक करके छोड़ने लगे.। इसी बीच मे ख़बर मिली कि हिन्दाल भी भाग जाने वाला है, इसलिए हुमायूँ उसके मिलने के लिए सिन्धु नदी के पास एक स्थान पर पहुँचा। यहाँ पर हिन्दाल की माता ने (हिन्दाल और हुमायूँ अन्य अन्य माताओं के पुत्र थे) उसे एक भारी भोज दिया; इसी जल्से मे हिन्दाल के गुरु की लड़की हमीदा बानू बेगम पर हुमायूँ मोहित हो गया, हिन्दाल इस विवाह के प्रतिकूल भी था, परन्तु उसकी माता की अनुमति से विवाह हो ही गया, बेगम का नाम मरियम मकानी रक्खा गया। हिन्दाल क़न्धार को भग गया और हुमायूँ ने लोहारी स्थान पर डेरा डाला।

जोधपुर के राजा मालदेव ने किसी समय हुमायूँ को सहायता देने का वचन दिया था, इसलिए वह सिन्धु और झीलम

नदी को पार करके जोधपुर की सरहद पर पहुँचा। परन्तु मालदेव ने चाहा कि धोका देकर उसे पकड़ कर शेरशाह के पास भेज दें। हुमायूँ को इस धोके का पता चल गया, इसलिए वह राजपूताना के रेगिस्तान होकर भागा; जोधपुर और जैसलमीर की सेनाओं ने पीछा किया। बड़े बड़े दुःख झेलने के बाद हुमायूँ अमरकोट पहुँचा।

अमरकोट का छोटा रेगिस्तानी क़िला उन दिनों एक राजपूत राना के हाथ में था; उसके पड़ोसी, विशेषत: तत्ता का शाह-हुसेन अरगून, उसे बहुत दुःख देते थे; इसलिए उसने हुमायूँ को शरण दी। भागने में जो लोग इधर उधर रेगिस्तान में छूट गये थे वे भी आकर मिले। क़िले में न तो इतना स्थान था और न भोजन था कि इस भीड़ का गुज़र होता, इसलिए हुमायूँ और राना ने सलाह करके तत्ता पर चढ़ाई कर दी।

शाही महल की बेगमें अमरकोट के क़िले में रहीं, जहाँ पर १५ आक्टोबर सन् १५४२ ई० में हुमायूँ की नवोढा बेगम 'मरियम मकानी' के पुत्र उत्पन्न हुआ। ख़बर पाते ही मारे हर्ष के हुमायूँ उछल पड़ा और ईश्वर को धन्यवाद देने के पश्चात् रुपया पैसा न होने के कारण एक मृगनाभि मँगा कर उसे तोड़ा और अपने अमीरों में कस्तूरी बाँट कर कहा कि "पुत्रोत्पत्ति के हर्ष में इस समय कस्तूरी आप लोगों की नज़र करता हूँ और आशा करता हूँ कि इस पुत्र का यश संसार में उसी तरह फैलेगा जैसे कि इस समय सुगन्ध फैल रही है"। यह बात सत्य निकली,

वह बालक अकबर था जिसका नाम आज तक लोग नहीं भूलते ।

इसी बीच मे हुमायूँ के किसी अमीर ने जूननगर अपने अधीन कर लिया; कुछ दिनों मे शाही लशकर भी वहीं पहुँचा । बीच बीच शाहहुसेन के सिपाहियों से लड़ाई होती थी । अन्त मे कोई अच्छी आशा न देख कर अमरकोट के राना ने हुमायूँ का साथ छोड़ दिया । इन सब बातों से खिन्न होकर बादशाह ने संसारी जंजाल छोड़ देने और मक्का की यात्रा करने का विचार किया । परन्तु उसी समय उसका पक्का साथी बैरामबेग, जो क़न्नौज की लड़ाई मे छूट गया था, गुजरात देश मे घूमघाम कर हुमायूँ के पास पहुँचा । उसकी सलाह से मक्का की यात्रा बन्द की गई; और शाहहुसेन से सन्धि करके कंधार की ओर शाही सेना बढ़ी ।

वह समय भी बड़ा विचित्र था; निश्छलता और सच्ची सहायता का नाम भी लोग प्रायः भूल गये थे । हर मनुष्य को यह चिन्ता रहती थी कि अपना मतलब किस प्रकार पूरा हो । अच्छे वीर योद्धाओं की सेना मे हर्ष से आ कर लोग भरती हो जाते थे, क्योंकि लूट मार का अच्छा मौक़ा मिलता था । दूसरे स्थान पर अधिक लाभ देख कर अपने बड़े से बड़े हितकारी का त्याग बुरा नही समझा जाता था । यह बात छोटों और बड़ों मे बराबर ही थी । राजा महाराज भी जब तक अपना मतलब देखते थे तब तक ख़ुशामद बरामद करते थे; बाद में शत्रु हो जाते थे ।

हुमायूँ के भाइयों की भी यही दशा थी । कामरान ने अपने को काबुल का स्वतन्त्र बादशाह बना लिया; और अस्करी को ग़ज़नी की जागीर दी । हिन्दाल ने कंधार के सेनापति से मिल कर अपने भाई के विरुद्ध वहाँ अमल जमाना चाहा; परन्तु पकड़ कर काबुल में .क़ैद कर लिया गया और कंधार अस्करी को मिल गया।

जब हुमायूँ का दल कंधार के समीप पहुँचा तो उसके कई आदमी पकड़ लिये गये, जिनमें से एक ने भग कर बादशाह को चेतावनी दे दी कि अस्करी का विचार आपके .क़ैद कर लेने का है । वह तुरंत घोड़े पर सवार होकर भागा, और शाही बेगम व वैरामबेग आदि कई एक अमीर पीछे से चले। ऐसी शीघ्रता में कुछ भी नहीं सूझता, एक वर्ष का बालक, अकबर और उसका परिवार डेरे ही पर छूट गया। अस्करी उसे प्रेम से घर ले गया, जहाँ अच्छा पालन पोषण किया गया।

अपने देश में हुमायूँ के लिए स्थान तक न रहा, इसलिए वह फ़ारस देश पहुँचा जहाँ शाह तहमास्प राज्य करता था। वैराम वेग के द्वारा बादशाह-हिन्दुस्तान की चिट्ठी पाकर शाह ने शरण दी और हुमायूँ को बड़े ठाट बाट से अपने यहाँ रक्खा। शाह तहमास्प शिया मुसलमान था और हुमायूँ सुन्नी था, इस लिए कभी कभी दोनों में मनमैली हो जाया करती थी। परन्तु हुमायूँ ने 'जैसी चलै बयरिया तैसी दीजै पीठ,' के अनुसार शिया मत पर झुक कर शाह फ़ारस को प्रसन्न कर लिया।

डेढ़ वर्ष रखने के उपरांत शाह ने बैराम को 'खाँ' की पदवी दी और दश सहस्र सेना हुमायूँ के साथ भेजी जिसने क़न्धार घेर लिया। अस्करी ने, जो इस समय भी क़न्धार मे था, अकबर और उसकी विमात्र बहन बख़्शी बानू बेगम को काबुल भेज दिया।

जब क़न्धार पर अमल न हो सका तो बैरामख़ाँ ने काबुल मे कामरान से लिखापढ़ी प्रारम्भ की, जिसने बाबर की वृद्धा बहन ख़ानज़ादा बेगम को अस्करी के पास भेजा। दिखाव मे तो इसका अभिप्राय यह था कि वह अस्करी को समझा बुझा कर हुमायूँ से मेल करावे, परन्तु गुप्त रीति से उसने अस्करी को और भड़काया। पाँच महीने के बाद शहर जीत लिया गया और प्रतिज्ञा-पत्र के अनुसार शाह फ़ारस के अधीन कर दिया गया। इसी बीच मे शाह का पुत्र मुराद जो सेना के साथ आया था मर गया; और फ़ारसी व तुर्की सेना से कुछ झगड़ा भी हो गया। अतः फारस वाले अपने देश को चले गये, और हुमायूँ कन्धार का राजा बन गया।

कुछ ही दिनों मे कामरान का बल हीन पड़ गया, इसलिए हुमायूँ ने काबुल पर चढ़ाई की। अन्य उपाय न देख कर निर्दय कामरान ने अकबर को क़िले के ऊँचे भाग पर बिठाल दिया जिसमे हुमायूँ कोई विरुद्ध काररवाई न कर सके; परन्तु जिस प्रकार हो सका, हुमायूँ ने काबुल ले लिया। यही पर अकबर का 'ख़तना' (पुरुषेन्द्रिय-चर्म-कर्तन, मुसलमानी रवाज) बड़े धूम धाम से किया गया।

कामरान ने कई बार काबुल पर छापा मारा; और दो बार अकबर को पकड़ ले गया, परन्तु इन सब बातों का कुछ प्रभाव न पड़ा। हिन्दाल लड़ाई में मारा गया, और कामरान व अस्करी मक्का यात्रा के लिए भेजे गये जहाँ उनकी मृत्यु हो गई।

हुमायूँ के भाइयों ने उसके साथ बड़ा अत्याचार किया था, परन्तु अब सब संकट दूर हो गये। केवल हिन्दाल के मरने पर हुमायूँ को दुःख हुआ; उसने हिन्दाल की लड़की रुक़िया बेगम से अकबर का विवाह करके ग़ज़नी की जागीर दे दी।

अब हिन्दुस्तान पर चढ़ाई करने की बारी आई। उस समय भारत में शेरशाह का प्रपौत्र आदिलशाह बादशाहत करता था। यह राज्य के अयोग्य, निर्दय और बल-हीन था। सिकन्दर नामक एक अमीर ने उस समय सिन्धु से गंगा नदी तक अपना राज्य स्थापित करके तातारख़ाँ को पञ्जाब का सूबेदार नियत किया था।

सन् १५५४ ई० में बैरामख़ाँ और अकबर के साथ अपनी सेना लेकर हुमायूँ ने सिन्धु नदी पार की। तातारख़ाँ ने रोहतास का मज़बूत क़िला ख़ाली कर दिया और कुछ दिनों में लाहौर भी छोड़ दिया। तीन ही महीने के भीतर हुमायूँ पञ्जाब भर का मालिक हो गया।

तातारख़ाँ अपना अवसर देखता था, उसने एक बड़ी सेना लेकर लुधियाना के समीप मच्छीवाड़ा में हुमायूँ का मुक़ाबिला

किया। रात भर घोर युद्ध हुआ; प्रातःकाल तातारख़ाँ की सेना भाग निकली।

मुग़ल सेना ने आगे बढ़ कर सरहिन्द पर मोर्चाबन्दी कर ली। कई दिन के बाद सिकन्दर शाह अस्सी सहस्र सेना लेकर आया। मुग़ल सेना बहुत ही कम थी, इसलिए स्वयं धावा करने से हिचकती थी। जब सिकन्दर ने धावा किया तो घोर युद्ध हुआ जिसमे मुग़लों की जीत रही और बहुत सामान उनके हाथ आया। हुमायूँ शाह की ओर से इनाम बाँटा गया; अकबर को अन्य वस्तुओं के अलावा यौवराज्य मिला।

सिकन्दर सिवालिक की पहाड़ियों मे जा छिपा; दिल्ली पर अमल कर लिया गया. हुमायूँ फिर राज्यगद्दी पर बैठा; पञ्जाब की रत्ता का भार मआलीख़ाँ को, हिसार का भार अकबर को, सरहिन्द का भार बैरामख़ाँ को और दिल्ली का भार तर्दीख़ाँ को दिया गया।

सिकन्दर ने फिर पञ्जाब मे उत्पात मचाना आरम्भ किया जिसको मआलीख़ाँ न रोक सका, इसलिए अकबर वहाँ का गवर्नर बना कर बैरामख़ाँ के साथ भेजा गया।

जनवरी सन् १५५६ मे हुमायूँ अपने पुस्तकालय से उतर रहा था कि ज़ीने से गिर पड़ा, और कई दिन दुःख झेल कर मर गया। यह बादशाह गम्भीर-प्रकृति नहीं था और विषय-वासना मे आसक्त रहना चाहता था; परन्तु निर्दय नही था, इतनी इतनी बुराइयाँ करने पर भी अपने भाइयों को दण्ड नही दिया, और

न लड़ाइयों में व्यर्थ हत्या की। वह राजनीति में बहुत कच्चा नहीं था, क्योंकि अपनी आत्मा के विरुद्ध भी शिया मत पर झुक कर शाह फ़ारस को अपने वश में कर लिया। उसमें यह प्रशंसा के योग्य गुण था कि हार जाने पर और देश-कोष छिन जाने पर भी बार बार हिम्मत बाँधता था और आगे का उद्योग करता था। लड़ाई के समय अमीरी ठाट छोड़ कर वीरता दिखाता था।

अध्याय २

अकबर की राजगद्दी और बैरामखाँ का प्रभाव।

जिस समय राजधानी में हुमायूँ की अकाल मृत्यु हुई उस समय अकबर पञ्जाब में था; यह शोकप्रद ख़बर उसे अमृतसर के पास कलानूर स्थान में मिली। तर्दीबेग ने राज-चिह्न कामरान के पुत्र मिर्ज़ा अबुल्क़ासिम के हाथ अकबर के पास भेज दिये। कई दिन शोक मनाने के पश्चात् अबुल फ़तेह जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर को राजसिंहासन दिया गया।

[इस स्थान से शाहंशाह अकबर के आदरार्थ बहुवचन ही का प्रयोग किया जावेगा।]

मुग़लों की रीति के अनुसार राजसिंहासन इस प्रकार दिया गया कि लाल दर्बारी तम्बू के उत्तम भाग में एक चबूतरे के ऊपर अकबर खड़े हुए। सामने सम्बूर से मढ़ी पाँच गद्दियाँ थीं। शिर पर राजछत्र ताना गया और चमर हिलाये गये। तब राज्य-सम्बन्धी तलवार कमर में बाँधी गई; और सुर्ख़ाब के परों

से शोभित कलगी पगड़ी मे लगाई गई। इस प्रकार सज्जित होकर बादशाह राज्यसिंहासन पर बैठे, और दर्बार के अमीरों तथा अन्य प्रजा ने झुक झुक कर सलाम किया। किसी ने अपनी तलवार की मुठिया यह सूचना देने के लिए सामने दिखाई कि शरीर और प्राण आपके अधीन हैं; दूसरे ने रेशमी या मख़मली कपड़े पर रख कर मोहरें नज़र की; तीसरे ने उत्तम उत्तम फल यह प्रकट करने के लिए भेंट किये कि पृथ्वी और उसकी पैदायश आप ही की है। तंबू के बाहर चाँदी का बड़ा नगारा बार बार बजाया जाता था। सब लोगो ने एक ही साथ मिल कर 'अल्लाहो अकबर' का कलकल शब्द किया। उसी समय आज्ञा मिली कि अकबर बादशाह के नाम से सिक्के जारी हों और उन्ही के नाम से ख़ुतबा (स्वस्त्ययन) पढ़ा जावे।

अब अकबर हिन्दुस्तान के शाहंशाह हो गये; परन्तु छोटी अवस्था के कारण राज्य का पूर्ण भार नही उठा सकते थे। इसलिए उनके प्रधान मन्त्री, बैरामख़ाँ, को 'ख़ान ख़ाना' की पदवी देकर राज्य का उच्च अधिकार सौंपा गया।

अकबर को राज्य मिले अधिक काल नहीं होने पाया था कि दिल्ली मे उपद्रव मचा। आदिलशाह सूर के योग्य सेनापति हेमू ने नगर पर अधिकार कर लिया और वहाँ के गवर्नर तर्दीबेग को मार भगाया। इतना ही नहीं, किन्तु हेमू ने अपना नाम राजा विक्रमादित्य रख कर दिल्ली मे अपना राज्य स्थापित कर लिया। यह मनुष्य जाति का बनिया था, पहले मेवात-राज्य

के रेवाड़ी नगर में एक छोटी दुकान करता था, फिर अपनी योग्यता से शहर का चौधरी हो गया; धीरे धीरे सूरवंश के पठान बादशाह के दरबार मे उसका प्रवेश हुआ जहाँ पर उसने अपना पूरा अधिकार जमा लिया। वह युद्धक्रिया मे इतना ही चतुर था जितना राज्य-प्रबन्ध मे, और बहुत से प्रतिपक्षियों को जीत कर अपने स्वामी के अधीन कर दिया। उसकी चाल भी ऐसी निराली थी कि हिन्दू होने पर भी पठान बादशाह और उसके मुसलमान अमीरों को प्रसन्न रखता था।

हेमू से परास्त होकर और दिल्ली से भग कर तर्दीबेग पंजाब मे शाही दरबार तक पहुँचा, जहाँ उसकी बड़ी बुरी गति हुई। वह सुन्नी मुसलमान था, और अपने कई एक कामों से बैरामख़ाँ को चिढ़ा चुका था। बैरामख़ाँ शिया था और इसी ताक मे लगा रहता था कि अवसर पाकर इतने बड़े प्रतिपक्षी को नष्ट कर डालूँ। अब वह समय आगया; और बैरामख़ाँ ने तर्दीबेग पर यह दोष लगाया कि यह बड़ा डरपोक है; और इसी की भीरुता से दिल्ली पर हेमू ने अधिकार जमा लिया है। अकबर यह सुन कर चुप हो रहे; और उद्धत बैरामख़ाँ ने बादशाह के मौन को आज्ञा का सूचक जान कर तर्दीबेग का हाथ काट डाला।

इस घोर कर्म के दो प्रभाव पड़े; दर्बार और फ़ौज के अमीरों और अफ़सरों के हृदय मे यह बात पक्की हो गई कि थोड़े से अपराध पर भी कठिन दण्ड मिलेगा, इसी लिए बादशाह और

बैरामख़ाँ की आज्ञा का पालन यत्न-पूर्वक होने लगा और किसी को भी यह साहस न रहा कि नियम का उल्लंघन करके कोई स्वतन्त्र काम करे। दूसरे, स्वयम् बादशाह अकबर के हृदय में यह बात जम गई कि बैरामख़ाँ निर्दय है और अपना अधिकार जमाने के लिए अनुचित काम करने में उसे कुछ भी हिचक नहीं।

हेमू का दिल्ली पर अधिकार कर लेना कोई साधारण बात नहीं थी। उसकी योग्यता, लड़ाई का सामान, सेना का बल, सभी ऐसी बातें थीं कि सुन कर सभी वीरों के हृदय थर्रा जाते थे। अब वह दिल्ली में कुछ सेना छोड़ कर पंजाब की ओर बढ़ना चाहता था; इसी लिए उसने पानीपत के बड़े लम्बे चौड़े मैदान में लड़ाई का बहुत अधिक सामान इकट्ठा करवाया था। इस ख़बर की भयानकता इससे जानी जा सकती है कि जब शाहीदरबार में इस समय के कर्त्तव्य का विचार होने लगा तो सब अमीरों और अफ़सरों ने यही निश्चित किया कि भारत वर्ष का राज्य छोड़ कर बादशाह काबुल चले जावें, जहाँ से अधिक सेना एकत्र करके हेमू पर चढ़ाई की जा सकती है। मुग़लों के लिए हिन्दुस्तान के किसी भाग में भी आत्म-रक्षा की आशा न रही।

इस भद्दी सलाह से बैरामख़ाँ को सन्तोष न हुआ; उसने आग्रह करके कहा कि मुग़ल बादशाही की उन्नति या अवनति का यही समय है। अगर यह अवसर चूक गये तो आगे चल कर कोई आशा नहीं, और शत्रु का बल व साहस दिन

दिन बढता जावेगा। बैरामखाँ की बात किसी को पसन्द न आई, परन्तु अकबर की रुचि भी उसी ओर देख कर सब ने मान लिया।

उसी समय एक बडी सवार सेना लेकर अलीकुलीखा नामक उजबक अमीर पानीपत की ओर चला, जहाँ हेमू की बहुत बडी युद्ध-सामग्री इकट्ठा थी। अकबर और बैरामखाँ ने पीछे से आने का निश्चय किया। अभी तक हेमू वहाँ नही आया था। अलीकुलीखाँ ने छापा मार कर हेमू की फौज को भगा दिया और सब सामग्री छीन ली। दूसरे दिन हेमू आ पहुँचा, उसने अपनी सेना के आगे सैकडो हाथी लगवा दिये जिनके दबाव से मुगल घोड-सवारो की एक भी नही चलती थी। मुगल सेना के दोनो किनारे ध्वस्त हो गये, । केवल बीच का भाग बच गया और हेमू ने इसके ध्वस्त करने के लिए भी हाथी बढाय। परन्तु इसी बीच मे उसकी आँख मे एक तीर लगा, जिससे बेसुध होकर वह हौदे मे गिर पडा। हेमू के गिरते ही उसकी सेना तितर बितर हो गई। हथवाल ने हेमू को सग्राम-भूमि से भगा ले जाना चाहा, परन्तु शत्रु के एक सैनिक ने हाथी रोक लिया। हेमू शत्रु के वश होकर शाही दरबार मे पहुँचाया गया जहाँ बैरामखाँ ने अकबर से आग्रहपूर्वक कहा कि अपनी तलवार की अग्नि इस दुष्ट काफिर (नास्तिक) के रक्त से बुझाइए। कोमल-चित्त अकबर को ऐसा अन्याय और घायल शत्रु के साथ ऐसा निघृ॑ण व्यवहार पसन्द न आया, उन्होने इन्कार कर

दिया। बैरामख़ाँ ने उसी समय बड़ी निर्दयता के साथ हेमू का मस्तक काट लिया।

ऐसे नृशंस कर्म करने से बैरामख़ाँ का मनोऽभिलाष पूरा न हुआ; उसका विचार था कि इस प्रकार का वध देखते देखते अकबर का हृदय कठोर हो जावेगा, तब वे उद्दंड रूप से सारे हिन्दुस्तान में बादशाही कर सकेंगे। परन्तु इसका परिणाम उलटा हुआ; बादशाह के चित्त में निश्चय हो गया कि बैराम अत्यन्त क्रूर है और बादशाह की आज्ञा के विरुद्ध भी काम करने में संकोच नहीं करता।

पानीपत की यह लड़ाई सन् १५५६ ई० में हुई; इसी मैदान में कौरवों और पाण्डवों से महाभारत युद्ध हुआ था जिसमें अक्षौहिणी की अक्षौहिणी सेनायें कट गईं, और हस्तिनापुर के राज्य का निश्चय पाण्डवों के लिए हो गया। इसी मैदान में तीस वर्ष पहले अकबर के पितामह बाबर ने भारतवर्ष का राज्य-सिंहासन ले लिया था। और इस समय भी अकबर के राज्य की जड़ गड़ गई; क्योंकि हेमू के न रहने से किसी में इतनी ताब न रह गई कि मुग़ल बादशाहत की जड़ भारतवर्ष से उखाड़ दे।

अभी एक बड़ा शत्रु सिकन्दर बाक़ी था, वह १५५७ ई० में सिवालिक की पहाड़ियों से निकला और पञ्जाब के शाही गवर्नर को लाहौर तक भगा ले गया। यह ख़बर सुनते ही अकबर ने स्वयं उसका पीछा किया; परन्तु वह इस योग्य नहीं था कि मुग़ल

सेना का सामना मैदान मे करे। इसी लिए उसने मानकोट के क़िले मे शरण ली; यह क़िला भारतवर्ष मे सव से पुष्ट और दुर्भेद्य माना जाता था। अकबर की सेना को वड़ी मुद्दत तक क़िला घेरना पड़ता, परन्तु सिकन्दर के वंगाल वाले साथियों ने सहायता करने से हाथ उठाया, इसलिए उसे अकवर से शरण माँगनी पड़ी। उसे विहार देश मे एक जागीर देकर क़िला ख़ाली करा लिया गया।

इसी समय मे शाही वेगमे जो कावुल मे थी शमसुद्दीन मुहम्मद के साथ हिन्दुस्तान को आईं। इस पुरुष की कथा वड़ी विचित्र है। यह पहले कामरान की सेना मे एक साधारण सैनिक था। जव क़न्नौज के समीप हुमायूँ की हार हुई और उसे अपनी जान लेकर भागना पड़ा तो यह आदमी उसके साथ था। गंगा नदी पार करते समय हुमायूँ डूवने लगा, तव शमसुद्दीन ने यथाकथंचित् उसके प्राण वचाये। हुमायूँ के वारे मे जो किंवदन्ती सुनी जाती है कि एक वार एक भिश्ती ने अपनी मशक पर चढ़ा कर उसे डूवने से वचाया और इस उपकार के वदले मे एक दिन का राज्य माँग कर सुवर्ण-विन्दु-युक्त चमड़े का सिक्का चलाया, उस किंवदन्ती का समय कदाचित् यही रहा हो।

अस्तु, इस उपकार से प्रसन्न हो कर हुमायूँ ने शमसुद्दीन को अपनी निज की सेवा मे रख लिया, उसी की स्त्री अकवर की धात्री हुई—दूध पिलाने और पालन करने का भार उसे

मिला। शमसुद्दीन का पुत्र अज़ीज़ अकबर के साथ का खेला हुआ था और इतना प्रिय था कि अपराध करने पर भी अकबर उसे यह कह कर छोड़ देते थे कि मेरे और अज़ीज़ के बीच मे एक दुग्ध की नदी बहती है (दोनों एक ही माता के दुग्ध पिलाये हुए हैं) जिसका मैं उल्लंघन नही कर सकता।

अकबर की दूसरी धात्री माहम अनगा थी। इसने भी प्रेम दिखलाने मे कसर नही रक्खी। जिस समय अस्करी के डर से हुमायूँ फ़ारस को भागा और कामरान ने अकबर को काबुल मे रख लिया, इन दोनों धात्रियों ने सच्चे प्रेम से होनहार बालक की सेवा की। फिर जब कामरान ने अकबर को क़िले के उस भाग मे बिठाल दिया जहाँ गोलों की आग बरसती थी, उस समय वीर-हृदया माहम अनगा अकबर के सामने खडी रही।

बादशाहत मिलने पर अकबर ने ऐसे बड़े उपकार का बदला दिया और माहम अनगा को शाही महल की अध्यक्षता सौंप दी। यह पद पा कर अनगा ने हाथ पैर फैलाना प्रारम्भ किया; उसे अपने व अपने पुत्र अहमद ख़ाँ के अधिकार बढ़ाने की तीव्र तृष्णा थी। हर प्रकार से उपाय करती थी कि बालराज अकबर के हृदय पर कैसे अपना दबाव डालूँ। उसके मार्ग मे बड़ा कण्टक रूप बैरामख़ाँ था; इसके रहते रहते अनगा का अभिलाष पूर्ण नही हो सकता था। बैरामख़ाँ ने तर्दीबेग के वध से प्रत्यक्ष कर दिया था कि जो कोई मेरा प्रतिपक्षी होगा उसकी यही अधोगति करूँगा।

उस समय अकबर की विचित्र दशा थी। न तो इतनी अवस्था हुई कि सम्पूर्ण राज्य-काज अपने हाथ मे लेकर किसी की दाल न गलने दें और न अभी तक इतना अनुभव ही हुआ कि स्वतन्त्र प्रबन्ध निर्दोष हो सके। बाहर बैरामख़ाँ अपना प्रभुत्व झलका रहा है और उद्दंड कर्मों से बादशाह के चित्त पर दवाव डालना चाहता है; भीतर माहम अनगा की शिक्षायें धीरे धीरे बैरामख़ाँ से वैमनस्य पैदा करा रही हैं। यह निश्चित नही कि किसका प्रभाव अधिक पड़ता था; परन्तु इसमे सन्देह नहीं कि बादशाह का चित्त बैरामख़ाँ से कुछ हट गया।

दोनों ओर से अच्छी खिँचाखिँची होती थी। बैरामख़ाँ अपनी मनमानी करता था; तुच्छ सी बात से भी चिढ़ कर मृत्युदण्ड दे देता था; अपने शत्रुओं को हज़ार तरह से दूर रखता था। परन्तु अनुचित काम करने से कभी नहीं हाथ उठाता था; योग्य योग्य पुरुषो का उल्लंघन करके अपने ही लोगों को बड़े बड़े ओहदे देता था। उसने एक शिया मुसलमान को सदर (न्यायकर्त्ता) का उत्तम पद दे दिया जिसके कारण मुग़ल लोग उसके विरुद्ध हो गये। एक सुन्नी धार्म्मिक का अपमान किया गया जिसे बादशाह बहुत मानते थे।

अब बैरामख़ाँ की क्षीणता का समय आया; राजा और प्रजा सभी उससे अप्रसन्न हो गये। माहम अनगा ने अनुकूल समय पा कर बादशाह अकबर को ख़ूब भर दिया। सन् १५६० ई० मे अकबर शिकार के बहाने बाहर गये और काम-

रान के पुत्र मिर्ज़ा अबुलक़ासिम को भी पीछे से आने की आज्ञा दी। वहाँ से अपनी माता के दर्शन के व्याज से दिल्ली पहुँचे। यहाँ पहले ही से सब सामान तैयार था; नगर रक्षा का पूरा उपाय किया गया था। बैराम से अलग होने पर लोगों ने अकबर को पट्टी पढ़ाना आरम्भ कर दिया जिसका परिणाम यह हुआ कि अकबर ने बैरामख़ाँ को एक चिट्ठी लिखी, और राज्य का उच्च अधिकार माहम अनगा के हाथ में कर दिया। उधर बैराम भी सब मामिला समझ चुका था, इसलिए उसने आगरा छोड़ कर हज्ज के लिए मक्के की तैयारी कर दी। फिर अकबर ने बैरामख़ाँ को दूसरी चिट्ठी लिखी जिसका आशय यह था कि "हमें आपकी राज-भक्ति का पूर्ण विश्वास था, इसी लिए हमने सम्पूर्ण राज्य-सम्बन्धी कार्य्य आप पर छोड़ दिये थे। अब हमारा विचार है कि राज्य का धुर हम स्वयं लें। आपके लिए यह श्रेयस्कर होगा कि मक्का की यात्रा कीजिए जिसके आप अत्यन्त इच्छुक थे। आपके निर्वाह के लिए कोई अच्छी जागीर नियत की जावेगी जिसकी आय आपके कर्म्मचारियों द्वारा आपके पास पहुँचा करेगी"।

झंडा, नगारा आदि जो राज-चिह्न बैरामख़ाँ के पास थे, वह सब उसने अकबर के पास भेज दिये। परन्तु मक्का जाने के बदले वह पञ्जाब पहुँचा, जहाँ कुछ लोगों की सहायता से उसने बलवा कर दिया। इस उत्पात का प्रबन्ध पहले ही हो गया था; क्योंकि माहम अनगा की अनुमति से अकबर ने शमसुद्दीन

मुहम्मद को कुछ सेना लेकर पञ्जाव भेज दिया था । बैराम खाँ हार कर सिवालिक की पहाड़ियों को भागा जहाँ अकबर ने स्वयं उसे घेर लिया । कोई उपाय न देख कर बैराम ने पश्चात्ताप किया और अपराध क्षमा कराना चाहा । अकबर ने उसे अभय-बाँह दी, परन्तु तब भी वह मारे भय के सामने नहीं आ सकता था । बड़ी कठिनता से नंगे पैर, गले मे पगड़ी लपेट कर, रोता हुआ और दण्डवत् पृथ्वी पर गिरता हुआ बैराम राज-दरबार मे आया । दरबारियों ने स्वागत किया और अकबर ने स्वय उठ कर उसका सम्मान किया ।

फिर शान्ति धारण करके बैरामखाँ मय अपने कुटुम्ब के मक्के की ओर चला, परन्तु मार्ग मे मुबारकख़ाँ नामक पठान ने जिसके पिता को उसने मरवा डाला था उसे यमधाम भेज दिया । प्रचंड और साहसी बैराम ने 'अल्ला हो अकबर' कह कर प्राण त्याग दिये ।

यद्यपि बैरामख़ाँ ने बड़े बड़े दोष किये थे, तथापि उसकी मृत्यु का हाल सुन कर अकबर को शोक हुआ और करुणा उपजी । उसके शत्रुओं ने चाहा कि मृत्यु के बाद भी उसका सब प्रकार से अपमान हो; परन्तु बादशाह ने उसकी पुरानी सेवा का स्मरण करके इन लोगों की एक भी न सुनी । उसके पुत्र अब्दुर्रहीम की शिक्षा का अच्छा प्रयत्न कर दिया गया, और उसकी विधवा का पाणिग्रहण स्वयं अकबर ने किया ।

अध्याय ३

अकबर का स्वतन्त्र राज्य;

माहम अनगा की चढ़ती कला।

अब क्या था, बैराम ख़ाँ के मरते ही माहम अनगा की बन आई; झट बैराम की सब सम्पदा ज़ब्त कर ली। परन्तु एक आदमी की सम्पदा से मन-बढ़ स्त्री की तृष्णा कैसे शांत हो सकती है ? वह तो चाहती थी कि मेरा मान और अधिकार अधिक हो और बादशाह को जो नाच चाहूँ नचाऊँ। हिन्दुस्तान में यह चलन तो था ही नहीं कि यूरुपीय देशों की तरह स्त्रियाँ बाहर निकल कर राज्य-काज करें; तब भी महल के भीतर से जितना हो सकता था उतने में कोई कसर न रक्खी गई। लोगों पर उसकी चढ़ती कला प्रकट होने लगी। जितने बड़े बड़े अधिकार वाले पद थे सब में उसी के इष्ट मित्र नियत हो गये, जिससे राज्य का रंग ही बदल गया। इस लोभमयी स्त्री को अकबर के कल्याण और प्रजा की रक्षा तथा राज्य की स्थिति का बहुत कम ख़्याल था; वह केवल अपना मतलब गाँठना चाहती थी।

माहम अनगा का पुत्र अदहमखा अकबर के साथ का खेला हुआ था। इस समय उसकी माता ने कह सुन कर उसे मालवा देश के जीतने और गवर्नरी करने के लिए भेजवाया, जहाँ वाजवहादुर पठान ने अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिया था। वह पठान वडा विषयी था, रूप और गुण से सम्पन्न सैकडो वाराङ्गनाएँ उसके यहाँ रहती थी, और उसकी स्त्री 'रूपमती' कविता और गानविद्या मे अद्वितीय थी।

वाजवहादुर युद्ध के लिए तैयार हुआ, परन्तु राजपूतो के नियम के अनुसार उसने कुछ आदमी अपनी राजधानी सारगपुर मे इसलिए छोड दिये कि हार की खबर पाते ही सब स्त्रियो का वध कर दिया जावे। लडाई मे अदहमखाँ ने वाजवहादुर को नर्मदा पार भगा दिया और स्वय शीघ्रता से सारगपुर की ओर वढा। यहाँ पहले ही कितनी एक स्त्रियाँ नष्ट कर दी गई थी, रूपमती के शरीर मे भी कई एक घाव हो गय थे। मुगल-सेना का आगमन सुन कर स्त्री-घातक लोग भगे और रूपमती भी किसी ओर निकल गई। अदहम ने वहुत सी स्त्रियो को क़ैद कर लिया और रूपमती की खोज मे दूत भेजे, परन्तु उस मानवती ने दूसरे का स्पर्श भी न पसन्द किया और विष खा कर अपना पीछा छोडाया।

अदहम ने वाजवहादुर की सम्पूर्ण सम्पदा छीन ली और मालवा पर अपना अधिकार कर लिया। इस विजय से उसे ऐसा गर्व हो गया कि न तो उसने लूट का माल अकबर के पास

भेजा और न देश का अच्छा प्रबन्ध ही किया। उसने उपद्रव मचाना और प्रजा को सताना प्रारम्भ कर दिया और एक प्रकार से अपने को स्वतन्त्र बना लिया।

अकबर यह हाल सुन कर बड़ी शीघ्रता से स्वयं मालवा पहुँचे। माहम अनगा ने अपने पुत्र को सचेत करने के लिए अकबर के चलने से पहले एक दूत भेजा, परन्तु वह बादशाह से आगे न पहुँच सका। अकबर को एकदम अपने पास देख कर अदहम से कुछ करते धरते न बना, परन्तु किसी प्रकार उन्हें अपने महल में ले गया। इस दुष्ट पुरुष ने अकबर के मारने का भी उपाय सोचा, परन्तु उसमें सफल न हुआ। अब अकबर ने उसे क्षमा करके आगरे की राह ली, परन्तु चलने से पहले बाज़बहादुर की स्त्रियों में से कुछ को अपने लिए पसन्द करके वहीं पर माहम अनगा के पास छोड़ दिया।

बादशाह के लौटते ही, अदहम ने उनकी पसन्द की हुई स्त्रियों में से दो को अपने घर में डाल लिया। यह ख़बर अकबर के कान तक पहुँची; उन्होंने कुछ सवार भेजे कि उन स्त्रियों को ढूँढ़ कर फिर शाही रनवास में रक्खें। फल यह हुआ कि माहम अनगा ने अपने पुत्र को दोष से बचाने के लिए उन दोनों अबलाओं को निर्दयता से मरवा डाला। इस बार भी दयालु अकबर ने दुष्टा का अपराध क्षमा कर दिया।

कहा जाता है कि मालवे से आगरा लौटते समय मार्ग में अकबर अपने साथियों से कुछ आगे बढ़ गये। जङ्गल में एक

वाघिन मय पांच बच्चो के निकल कर उनके मार्ग मे आ पडी। उन्होने वीरता के साथ उस भयानक जन्तु को अपनी तलवार से काट कर गिरा दिया। यह हाल जान कर लोग चकित हो गये और वादशाह के विरुद्ध कोई काररवाई करने से मुँह मोडने लगे।

कहा जा चुका है कि वैरामखाँ के रोकने के लिए शमसुद्दीन पञ्जाव भेजा गया था, अकवर ने पहले उसे पञ्जाव का गवर्नर वनाया और कुछ दिनो मे प्रधान मन्त्री का उच्च पद दिया। इससे पहले इस अधिकार पर मुनीमखाँ था, जिसको माहम अनगा वहुत चाहती थी और जिसने वैरामखा के साथ वडी विरुद्ध क्रिया की थी। इस परिवर्तन से माहम अनगा और उसके सहायको को वडा दु ख मिला, इसलिए वे शमसुद्दीन के हटाने का प्रवन्ध करने लगे।

माहम अनगा और उसके पुत्र अदहम की ओर से अकवर का चित्त पूर्णतया हट गया, इसलिए उन्होंने अदहम को मालवे से वुला भेजा। अव दुष्ट लोगा ने सोचा कि अदहम क्रोधी है, इसीसे काम लेना चाहिए, इसलिए उसे खूव भर कर ठीक कर दिया। रात को आगरे के शाही महल मे जव कि प्रधान मन्त्री और उसके कई एक गुप्त शत्रु वैठे हुए राजकाज पर विचार कर रहे थे, उसी समय अदहम ने कूद कर शमसुद्दीन के हृदय मे कटारी मारी, उसने लडखडाते हुए भागने का इरादा किया, परन्तु शत्रुओ ने उसे घसीट घसीट कर तलवारो से वही समाप्त कर दिया।

उस समय अदहम क्रोधान्ध हो रहा था, उस पर ख़ून सवार था, तुरन्त अकबर के शयनागार की ओर बढ़ा। उधर घोर कल-कल शब्द सुन कर अकबर की आँख खुल गई; जो बाहर निकल कर देखा तो अनर्थकारी अदहम ने कूद कर उनके दोनों हाथ पकड़ लिये और दो एक धमकी की बातें कहीं। हिन्दुस्तान के बादशाह का इस तरह हाथ पकड़ लेना सुगम नहीं था; अकबर ने एक ही झटके में अपने हाथ छोड़ा लिये, और दुष्ट के हाथ से हथियार छीन कर एक ऐसा वज्रवत् थप्पड़ मारा कि अदहम चक्कर खाकर गिर पड़ा और अचेत हो गया। क्षमा की भी हद होती है, और क्रोध में साधारण आदमी दूसरे के जीवन को कुछ नहीं समझते तो बादशाह के लिए कौन सी बड़ी बात है। उसी समय अकबर ने आज्ञा दी कि इसके हाथ पैर बाँध कर कोठे पर से नीचे डाल दो। इस प्रकार दो बार गिराने से अदहम की हड्डियाँ तो चूर्ण हो गईं और प्राण यम-लोक को सिधारे।

जब अकबर का क्रोध शान्त हुआ, तो उन्होंने और लोगों को जो इस पातक में शामिल थे क्षमा कर दिया; और अदहम की बुड्ढी माँ को भी जो सब झगड़ों की जड़ थी समझा बुझा कर शांत किया; परन्तु यथार्थ शांति कैसे हो सकती थी। जिस पुत्र के लिए उसने यह सब कपट-रचना रची थी, उसके न रहने से सभी खेल मिट्टी में मिल गया और अनगा का हृदय ऐसा विदीर्ण हो गया कि बहुत उद्योग करने पर भी वह चालीस दिन

से अधिक न जी सकी। इसकी मृत्यु पर और पीछे से अदहम की मृत्यु पर भी अकबर ने बड़ा शोक किया, और दिल्ली मे दोनों के मक़बरे बनवा दिये। धन्य कृतज्ञता! महान् लोग पूर्व उपकार कभी नहीं भूलते!

इसी सम्बन्ध मे हम दो घटनाओं का उल्लेख करते हैं जिनमे अकबर के शरीर पर आक्रमण किया गया।

एक दिन बादशाह अकबर शिकार से लौटते हुए बाज़ार होकर निकले; जब इनका घोड़ा सड़क पर आया तो एक महल के कोठे पर से तुग़लक़ फुलाद नामक दुष्ट ने तीर चलाया; जो अकबर के कन्धे मे लगा। हलका सा घाव हो गया, परन्तु बादशाह ने उसे अपने हाथ से निकाल कर फेंक दिया और महल का मार्ग लिया। क्रूरकर्मा फुलाद पकड़ा गया, उसने चाहा कि किसी दूसरे को भी इस दोष मे साने, परन्तु उसकी कोई बात सुनी न गई और वहीं पर प्राणदण्ड दे दिया गया।

फुलाद ने यह काम अपने मालिक शरफुद्दीन की आज्ञा से किया था। शरफुद्दीन पर माहम अनगा की ऐसी कृपा रही थी कि उसे 'पंजहज़ारी, (पाँच सहस्र सेना का पति) का बहुत ऊँचा ख़िताब मिल गया, और निर्वाह के लिए अजमेर व नागौर की जागीरें दी गईं। वह अपने बाप का बड़ा विरोधी था, जिस की मक्का से लौटने की ख़बर सुनाई दी। वह डर गया कि शत्रु रूप पिता का आना अच्छा नहीं, इसलिए दरबार छोड कर वह अपनी जागीर की ओर भागा। यहाँ दो एक और बाग़ियों को

मिला कर उसने राज्य पलट देने का मनसूबा बाँधा। निश्चय यह हुआ कि पञ्जाब में बलवा करते हुए काबुल को चलो जहाँ हुमायूं की दूसरी स्त्री और उसका पुत्र मुहम्मदहकीम वास करते हैं; फिर लड़ाई झगड़ा करके अकबर के स्थान में मुहम्मद-हकीम को बादशाह बनाओ।

अकबर ने इन बाग़ियों के विरुद्ध सेना भेजी, परन्तु वे ऐसे छली व धूर्त्त थे कि किसी प्रकार निकल जाते थे। उन्होंने काबुल में सब मामिला ठीक कर लिया, परन्तु आपस ही में फूट हो जाने से उनके सब प्रयत्न निष्फल हो गये, और कितने एक बड़े आदमियों की जान गई।

दूसरी घटना इस प्रकार हुई। अकबर का मामा, ख़्वाजा मुअज़्ज़म दिल्ली में रहता था। उसने ज़ोहरा बेगम से विवाह किया था जो हुमायूँ की एक स्त्री फ़ातिमा की लड़की थी। ज़ोहरा के साथ मुअज़्ज़म बड़ा बुरा बर्ताव करता था और उसे रोज़ रोज़ वध कर डालने की धमकी देता था। दीन अबला ने अकबर के पास फ़रयाद भेजी, इस लिए वे एक बार शिकार करते करते उसी ओर निकल गये। अकबर के आने की ख़बर सुन कर मुअज़्ज़म का क्रोध भड़क उठा; उसने छुरी से ज़ोहरा का हृदय विद्ध करके छुरी बादशाह के सामने फेंक दी। अकबर को भी क्रोध आया; वे एक दम घर में घुस पड़े। चौखट के पास ही एक ग़ुलाम ने बादशाह के काट डालने का इरादा किया, परन्तु और लोगों ने उसे पकड़ लिया। मुअज़्ज़म और ग़ुलाम, दोनों हाथ पैर

बाँध कर यमुना में डाल दिये गये; परन्तु मुअज्ज़म डूबा नहीं। तब अकबर ने उसे ग्वालियर के क़िले में क़ैद कर लेने की आज्ञा दी, जहाँ उन्मत्त होकर वह मर गया।

इस प्रकार अकबर की रक्षा कई आक्रमणों से हुई। सब में उन्होंने अपनी पक्की दृढ़ता दिखला दी और प्रकट कर दिया कि पहले के बादशाहों की तरह मैं भीरु नहीं हूँ; मैं दृढ़ता-पूर्वक राज्य करूँगा और दुष्टों को दण्ड देकर देश की बुराइयाँ मिटाऊँगा।

अध्याय ४

लगातार इतिहास; युद्ध; राज्यवृद्धि; मृत्यु।

सन् १५६१ ई० में मुग़ल बादशाहत की यह दशा थी। अकबर पर प्रभाव डालने वाले बैरामख़ाँ और माहम अनगा आदि नष्ट हो गये; बादशाह ने सब राजकाज स्वयं अपने हाथ में रक्खा। इस समय मुग़ल राज्य का विस्तार पंजाब, संयुक्त प्रदेश, ग्वालियर और अजमेर तक था। बनारस, चुनार, बिहार और बंगाल आदि अभी तक सूरवंशीय अथवा अन्य पठान राजाओं के हाथ में थे। विन्ध्यपर्वत से दक्षिण के देश स्वतन्त्र थे।

इसमें सन्देह नहीं कि बैरामख़ाँ के समय में भी अकबर को यह चिन्ता थी कि भारतवर्ष में किस प्रकार के राज्य से छोटे बड़े अपने वश में आ सकते हैं। इसमें कठिनाइयाँ भी थीं। कई सौ वर्ष तक उन मुसलमानों का राज्य इस देश पर रह चुका था जिन्होंने अपने मतलब के सिवा प्रजा की भलाई पर दृष्टि ही न डाली। राजा समझते थे कि यह हिन्दुओं का देश है जिनसे सहानुभूति की कोई आशा नहीं, इस लिए जबतक बने मारो खाओ। प्रजा समझती थी कि यह अन्यदेशी लुटेरे आज हैं तो कल नहीं; सब आँधी की तरह इधर से आकर उधर निकल जावेंगे।

इसके अलावा मुसलमानों के इतने वंशो ने यहां राज्य किया था कि उनके पुत्र, पौत्र और सम्बन्धी देश मे बहुत भरे थे: हर एक समझता था कि राज्य मेरा ही है, और समय पाकर बलवा करके कुछ दिनों के लिए कहीं न कहीं जम जाता था। सब के चित्त मे यह बात बैठ गई थी की मुग़ल लोग अभी नये आए हैं और पूर्व बादशाहों की तरह परास्त होकर निकल जावेंगे। इस बात से विश्वास और भी पक्का हो गया कि क़न्नौज की एक ही लड़ाई से हुमायूँ के पैर उखड़ गये और सिवा भागने के और कुछ न करते बना।

अकबर के विचार दूसरी तरह के थे। वे सोचते थे कि पुरानी बातों का स्मरण लोगों के जी से कैसे मिटाऊँ, उनके हृदय पर यह बात कैसे दृढ़ करूँ कि मैं प्रजा को पुत्र की तरह पालना चाहता हूँ, और ग़रीब व अमीर, हिन्दू व मुसलमान, सब के साथ एक बरताव करना चाहता हूँ; उनको किस प्रकार निश्चय कराऊँ कि मैं सम्पूर्ण भारतवर्ष को एक ही सूत्र से बाँधना चाहता हूँ जिससे सब जातियों और धर्मों के लोग अपना अपना हक़ लें और एक दूसरे से विरोध न करे।

इसी आशय से अकबर ने दो काम किये; एक राजनीति और युद्ध के द्वारा देशों को जीत कर अपने राज्य मे मिलाना, और दूसरा, राज्य की कुरीतियों को दूर करके उत्तम प्रबन्ध करना। यद्यपि यह दोनों काम एक ही पुरुष ने किये और एक दूसरे से घना सम्बन्ध रखते हैं, तथापि सुभीते के लिए दोनों

पृथक् पृथक् दिखाये जावेंगे। वर्त्तमान अध्याय में पहली वात का संक्षेप से वर्णन होगा।

अपने हाथ में राज-काज लेने के पहले ही वर्ष अकवर ने मालवा देश अपने राज्य में मिला लिया। इससे कुछ ही दिन पीछे चुनार के पठान शासक ने जौनपुर का आक्रमण किया; मुग़ल सेना ने उसे परास्त कर दिया। अकवर स्वयं कालपी हो कर यमुना नदी पार करके प्रयाग के समीप तक पहुँचे और अपने सेनापति से मुलाक़ात करके आगरे को लौटे। उसी साल वादशाह ने अजमेर से चढ़ाई करके जोधपुर रियासत का मेरटां नाम क़िला छीन लिया; इस युद्ध में राजपूतों ने वड़ी वीरता दिखाई।

सन् १५६२ ई० में तापती नदी के किनारे के दो नगर, वीजागढ़ और वुरहानपुर मुग़ल राज्य में मिला लिये गये। परन्तु इसका फल अच्छा न हुआ; क्योंकि यहाँ के शासक मालवा के भूतपूर्व पठान शासक से मिल गये; छोटे छोटे ज़मीदारों ने भी उनकी यथाशक्ति सहायता की। सवने मिल कर मुग़ल सेना का सामना किया और उसे परास्त कर के मालवा देश छीन लिया। फिर दुवारा शाही सेना ने इन लोगों को भगा कर उस देश पर अमल किया। मालवा के भूतपूर्व गवर्नर ने अन्य उपाय न देख कर अकवर से शरण मांगी; जिन्होंने पहले उसे एक हज़ार और दो हज़ार योद्धाओं का सेनापति वनाकर अपनी सेवा में रख लिया। स्मरण रहे कि अकवर अपने प्रतिपक्षियों

पर कृपा और क्षमा दिखा कर अपने से मिला लेते थे। जो शत्रु उनसे शरण माँगता था उसपर सदा उदारता का व्यवहार होता था। इस प्रकार वे उसके बल को अपना बल बना लेते थे और सब प्रकार से ज़ाहिर कर देते थे कि मुग़ल बादशाह के वश हो जाने और सेवा करने से किसी के आदर व सम्मान मे किसी प्रकार का बट्टा नही लग सकता था।

पञ्जाब मे रावलपिंडी के पूर्व उत्तरीय ज़िलो मे गक्खर लोग रहते थे। यह बड़े धृष्ट और उत्पाती थे और मुग़ल बादशाह का महत्त्व नही स्वीकार करते थे। अकबर ने सेना भेज कर बड़े युद्ध के पीछे उनको परास्त कराया और उनको क़ैद कर लिया।

१५६४ ई० तक प्रयाग के पूर्व का देश स्वतन्त्र था। चुनार का क़िला एक ग़ुलाम के हाथ मे था, जिसने अकबर को उसे दे देने की चिट्ठी लिखी। इस प्रकार केन्द्र रूप चुनार के पा जाने से आगे का देश भी सुगमता से बादशाह के हाथ आ गया।

उसी साल शिकार खेलते खेलते अकबर मध्यदेश पहुँचे और मालवा होकर मऊ छावनी के समीप माँडू के लिए चले जहाँ पर उन्होंने उज़बक वंशीय अब्दुल्ला को गवर्नर बनाया था। अब्दुल्ला का इरादा स्वतन्त्र राजा बन जाने का था, और उसे यह भी मालूम हो गया कि बादशाह मेरे ही ठीक करने के लिए यहाँ आ रहे हैं। भय-विह्वल होकर यह उज़बक सरदार

गुजरात को भागा; परन्तु अकबर ने वहाँ के शासक को चिट्ठी लिख दी कि राजद्रोही अब्दुल्ला को शरण न दे। इसी लिए अब्दुल्ला भाग कर जौनपुर पहुँचा जहाँ उसका साथी अलीकुलीख़ाँ रहता था, और वहीं मर गया।

अकबर ने माँडू में प्रवेश किया; वहाँ के ज़मींदारों ने उनका अच्छा सत्कार किया। यहीं पर ख़ानदेश के मुबारकशाह का दूत आया जिसका बड़ा आदर हुआ। चलते समय अकबर ने ख़ानदेश के शासक के नाम एक फ़र्मान (आज्ञापत्र) दिया कि आपकी लड़कियों में जो मेरे योग्य हो उसे भेज दो। इस पत्र से ख़ानदेश के बादशाह ने अपना बड़ा सम्मान समझा और बड़ी धूमधाम से अपनी लड़की माँडू भेजी।

आगरे में अभी तक सिवा एक पुराने ईंट के क़िले के कोई अच्छा दुर्ग नहीं था, इसलिए अकबर ने सन् १५६५ ई० में उसके स्थान पर एक मज़बूत और हिन्दुस्तान के बादशाह के रहने के योग्य क़िला बनाने की आज्ञा दी और उसका भार क़ासिमख़ाँ नामक सरदार पर रक्खा जो तीन सहस्र सेना का अधिपति था। यह क़िला लाल पत्थर का बनाया गया, इसमें आठ वर्ष लगे और कोई पैंतीस लाख रुपए का व्यय हुआ। इसकी नीव पानी के सोत तक है और पत्थर छेद छेद कर लोहे की कड़ियों से जोड़े गये हैं।

पहले अध्याय में कहा जा चुका है कि उज़बकों और चग़ताइयों (मुग़लों) में ख़ान्दानी दुश्मनी रहा करती थी।

हिन्दुस्तान में भी बहुत से उज़बक सरदार थे जो तैमूर के समय से अकबर के समय तक आते रहे। परन्तु चग़ताई मुग़ल होने पर भी अकबर को उज़बकों से कुछ ईर्ष्या नहीं थी; और लोगों की तरह उन्हें भी उच्च पद मिलते थे। जिस समय मालवा में अब्दुल्ला उज़बक के साथ बादशाह ने कड़ा व्यवहार किया, तो दरबार और सेना के उज़बकों को बुरा लगा। उन्होंने सोचा कि इसी मिस से अकबर उज़बकों को निर्मूल कर देंगे। निदान उन लोगों ने मिल कर जौनपुर में बलवा कर दिया।

नरवार स्थान में हाथी का शिकार करते समय अकबर ने यह ख़बर सुनी; और बहुत शीघ्र अपने सेनापतियों को सेना लेकर बलवा शान्त करने के लिए भेजा। और सेना एकत्र करके स्वयं भी पीछे से चले। जब वे क़न्नौज पहुँचे तो एक अशांति-सम्पादक ने अपने को उनके वश में कर दिया। गंगा नदी में बाढ़ चढ़ी थी, इसी से जौनपुर में अकबर को कुछ विलम्ब हुआ। इतने में ख़बर मिली कि कुछ आततायी लखनऊ आ गये हैं। बादशाह कुछ सेना लेकर लखनऊ चले और एक दिन रात बराबर चलने के पीछे वहाँ पहुँचे। इतने में दुष्टों ने लखनऊ छोड़ कर फिर जौनपुर की राह ली जहाँ से बंगाल के स्वच्छन्द बादशाह के पास सहायता के लिए दूत भेजे।

शाही सेना के सेनापति ने चाहा कि शांतिपूर्वक मेल हो जावे, इसकी लिखा पढ़ी होने लगी। तब तक दूसरी शाही सेना राजपूताना से आ गई जिसके सेनापति ने लड़ाई माँगी। इस

लड़ाई में शाही सेना हार गई; परन्तु इसके प्रथम ही अकबर ने उन उत्पातियों को क्षमा कर दिया था, इसलिए अफ़सरों को आज्ञा मिली कि दरबार को लौट जावें। अकबर स्वयं चुनार गये जहाँ क़िले के मज़बूत करने की आज्ञा दी, और मिर्ज़ापुर के जंगलों में शिकार करते हुए प्रतीक्षा करने लगे कि उज़बक लोग फिर कुछ उत्पात तो नहीं करते। फिर एक बार उपद्रव हुआ, परन्तु अकबर ने अपनी सेना का ऐसा प्रबन्ध किया कि शत्रुओं को हार माननी पड़ी। अकबर ने उनका अपराध क्षमा कर दिया। उसी साल विहार देश में रोहतास का क़िला मिला और उड़ीसा के शासक के यहाँ दूत भेजे गये जो बड़े बड़े उपहार लेकर लौटे।

सन् १५६६ ई० में लाहौर और काबुल में बलवा हो गया। अकबर को स्वयं वहाँ जाना पड़ा। उत्पाती लोग लाहौर से सिन्धु नदी के पार भगा दिये गये और काबुल की अशांति भी दूर हो गई, परन्तु बादशाह को राजधानी से दूर जान कर जौनपुर में फिर बलवा हो गया। इस लिए अकबर को शीघ्र लौटना पड़ा।

इसी बीच में दिल्ली के गवर्नर के प्रमाद से एक क़ैदी सरदार छूट गया। इस डर से ग़वर्नर दिल्ली से भगा, और बाग़ियों में जा मिला। क़न्नौज के समीप भी बलवा हो गया। अब बादशाह को स्पष्ट प्रतीत हो गया कि बहुत से सरदार छली और विश्वास के अयोग्य हैं। और यदि कोई प्रबल शत्रु मुग़ल-राज्य पर चढ़ाई कर दे तो शीघ्र अराजकता फैल जावे।

आगरा से अकबर रायबरेली के जिले मे भोजपूर स्थान पर गय जहाँ वलवे वाले लोग थे। तब तक वे लोग गंगा पार करके कालपी की ओर भागे। वर्षा के कारण देश जलमय हो रहा था, परन्तु युद्ध के चाव से अकबर ने अपनी प्धान सेना कटा स्थान को भेज दी और स्वयं मानिकपुर की तैयारी की. जहा वागी लोग पकड़े गये। लड़ाई मे और उसके पीछे मुखिया मुखिया वागी मार डाले गये। तब अकबर प्रयाग, वाराणसी और जौनपुर देखते हुए आगरे को गये।

अब पूर्व के देशों मे शाही अमल एक प्रकार से पक्का हो गया, इसलिए अकबर ने राजपूताना पर दृष्टि डाली। यहाँ वहुत से राजपूत स्थान स्थान पर राज्य करते थे, जिनमे सबसे पुराना और कुलीन मेवाड़ का राना उदयसिंह था। उसका प्रधान दुर्ग चित्तौर का किला था जो सिवाय एक वार के सदा दुर्भेद्य ही रहा था। अकबर ने सन् १५६७—६८ ई० मे यह किला तोडा। इसके भेदन मे वादशाह ने जो जो प्रयत्न किये और राजपूतो ने जो वीरता दिखाई उसका वर्णन आगे चल कर विस्तृत-रूप से होगा।

चित्तौरगढ़ पर विजय पाने के पश्चात् अकबर ने अजमेर के मुईनुद्दीन चिश्ती की दरगाह की पैदल यात्रा की। सन् १५६९ ई० मे रनथम्भौर का मज़बूत क़िला अकबर ने ले लिया।

अकबर के दो जोड़िया पुत्र उत्पन्न हुए थे, जिनमे से एक भी जीवित न रहा, इसलिए उन्हे सन्तान विषय मे कुछ चिन्ता

थी। एक बार वे सिकरी के शेख़-सलीमचिश्ती की कुटी पर गये जो आगरे से नैॠत्य कोण में बाईस मील पर है। चिश्ती बाबा ने वादा किया कि तेरे चिरंजीवी पुत्र होगा। इस आशा से अकबर बार बार कुटी पर जाते थे। अन्त में समीप ही एक ऊँचे टीले पर उन्होंने शाही महल बनवा लिया। चिश्ती ने उसी स्थान पर एक भारी मसजिद बनवाई। दरबार के अमीरों ने भी देखादेखी अपने अपने मकान वहाँ बनवा लिये।

सलीमचिश्ती पहुँचा हुआ फ़क़ीर था। अभी शाही महल बन भी न चुका था कि अकबर की स्त्री (जोधपुर की राजकुमारी) सत्ववती हो गई और फ़क़ीर की कुटी ही में उसके पुत्र उत्पन्न हुआ। सलीमचिश्ती के नाम से इस बच्चे का नाम शाहज़ादा-सलीम रक्खा गया, अकबर के पीछे जहाँगीर के नाम से यही राज्य का अधिकारी हुआ।

इन घटनाओं से कुछ ही दिन पीछे अकबर को गुजरात देश पर फ़तेह (विजय) मिली, इसलिए इस स्थान का नाम फ़तेहपुर—सिकरी रक्खा गया।

दूसरे वर्ष राजपूताना में रियासत जोधपुर के नागौर स्थान में अकबर थे जब कि वहाँ का राजा और बीकानेर का राजा मय अपने पुत्र के दरबार में आये। बादशाह ने अपनी उदारता दिखलाने और राजपूतों से मेल करने के लिए राजा बीकानेर की कन्या से अपना विवाह कर लिया। कुछ ही दिन पीछे

लाहौर जा कर और पञ्जाब देश का प्रबन्ध ठीक करके गुजरात देश जीतने की तैयारी हुई।

उस समय गुजरात देश मे सूरत, भड़ौच, खैरा, अहमदाबाद, बरौदा का कुछ भाग, मही कंठ, रेवा कंठ, पालनपुर, राधनपुर, बलिसना, खम्भात, ख़ानदेश और काठियावार आदि शामिल थे। बहुत दिनो से यहाँ कोई ठीक ठीक शासक नहो था; मुसलमान सरदार जहाँ पाते थे अमल करके राजा बन जाते थे। आपस मे लड़ाइयाँ भी बहुत होती थी जिनका व्यय बेचारे किसानों के शिर पड़ता था। ऐसी दशा मे कई एक सरदार मिल मिल कर दूसरों की रियासत मे लूट मार करते थे। निदान उस समय गुजरात अराजकता का केन्द्र हो रहा था। अकबर ने यह गड़बड़ी देख कर उसके जीतने का विचार किया।

यह बहुत बड़ी चढ़ाई थी, और इसमे बडी बुद्धि और विचार की आवश्यकता थी। सन् १५७२ ई० मे फ़तेहपुर—सीकरी से चल कर अकबर की सेना अजमेर पहुँची। यहाँ से दश सहस्र अश्वसेना आगे भेज कर शेष सेना के साथ अकबर पीछे से चले। नागौर पहुँच कर सेना रुक गई और युद्ध की सामग्री इकट्ठा होने लगी। यही पर अकबर को ख़बर मिली कि उनके दूसरा पुत्र (दूसरी स्त्री से) हुआ है। इसका नाम शाहज़ादा दानयाल हुआ। यहाँ से कूच करके सेना अहमदाबाद पहुँची। बीच ही मे गुजरात के प्रधान शासक ने, जो नाम मात्र के लिए प्रधान था, अकबर से अपनी अधीनता स्वीकार कर ली; और

अहमदाबाद मे घोषणा कर दी गई कि अकबर गुजरात के शहंशाह हैं।

गुजरात का कोई सरदार अकबर का वशवर्ती होने के लिए उद्यत नही था; इनमे से विशेष भड़ौच, बरौदा और सूरत के शासक थे। जब देश की शांति के लिए अहमदाबाद मे पूरा प्रबन्ध हो गया तो अकबर खम्भात पहुँचे जहाँ उन्होंने पहले पहल समुद्र देखा। वहाँ से बरौदा गये जहाँ देश के शासन का पूरा प्रबन्ध किया गया अहमदाबाद मे राजधानी की गई और जो अमीर साथ गये थे उनमे से एक वहाँ का गवर्नर बना दिया गया। यहाँ से भड़ौच और सूरत को सेना भेजी गई। परन्तु भड़ौच का सरदार मुग़ल शासक का वध करके बड़ौदा की ओर बढ़ा, जिस पर अकबर ने थोडी सी सेना लेकर उसका आक्रमण किया। उस समय वह एक छोटी सी नदी के दूसरी ओर साहसा स्थान पर पड़ा था।

नदी उतर जाने के योग्य थी, परन्तु अकबर के पास केवल चालीस योद्धा थे, इसलिए उन्हे छिपा कर और सेना के आने की प्रतीक्षा होने लगी। रात्रि को साठ और आये; इन सौ योद्धाओं के साथ नदी उतर कर अकबर ने अपने से दशगुनी शत्रु की सेना पर छापा मारा। शत्रु ने देखा यह लोग बहुत कम हैं, इसलिए बस्ती से निकल कर मैदान मे आ गया। अकबर की छोटी सेना ने नगर पर अमल करके शत्रु का पीछा किया।

युद्ध-स्थान मैदान नही था, किन्तु एक पतली गली थी

जिसके दोनों ओर दूर तक नागफनी की घनी झाड़ थी। झाड़ के पार दोनों ओर शत्रु की सेना थी। गली इतनी तङ्ग थी कि तीन सवारों से अधिक लड़ ही नहीं सकते थे। साम्ने की पंक्ति मे स्वयं अकबर, वीर क्षत्रिय राजा भगवानदास जिसकी बहन से वादशाह ने विवाह किया था, और उसका भतीजा मानसिंह. थे। तीनों वीर बड़े जोखिम मे थे, परन्तु करते ही क्या, आगे पीछे किसी ओर नहीं जा सकते थे। सामने से शत्रु के सैनिक दवाते आते थे। इतनी कुशल थी कि झाड़ के कारण दाहिने वाएँ से शत्रु का आना असंभव था। निदान तीनों वीरों ने अपने सामने के एक एक सैनिक को मार गिराया। इससे शत्रु के दल मे क्षण भर के लिए थर्राहट छा गई; इसी वीच इन लोगों ने शत्रु को दवा कर अपने सैनिक आगे वढ़ा दिये जिन्होंने अपने अधिपति को संकट मे देख कर जान तोड़ तोड़ कर साहस किया। शत्रु का दल घवड़ा कर इधर उधर खसकने लगा, और उनका वाग़ी सेनापति किसी प्रकार भाग कर राजपूताना पहुँचा।

इसी वीच मे भडौच भी शाही अधिकार मे आ गया; केवल सूरत रह गया; जहाँ अकवर स्वयं गये। यह गढ़ भी मज़वूत था और कोई डेढ़ महीने तक वड़ा उद्योग करना पड़ा जव वह अधिकार मे आया। सूरत मे कुछ दिन रह कर अकवर ने गुजरात का प्रवन्ध पुष्ट किया; तव आगरे को लौटे।

जिस वाग़ी को अकबर ने सारसा मे परास्त किया था, उसने राजपूताना पहुँच कर फिर ज़ोर वाँधा: एक दूसरा वाग़ी भी आ

कर मिल गया। पाटन स्थान पर शाही सेना से लड़ाई हुई जिसमे उनकी जीत हो ही चुकी थी कि वे लूट मे पड़ गये; तब तक शाही सेना ने सावधान होकर उनको हरा दिया। इससे भी उस बाग़ी को सन्तोष न हुआ। वह पंजाब पहुँचा जहाँ शाही सेना से कई जगह हारा, परन्तु हर एक बार मुट्ठी से निकल कर लूट मार मचाता था। निदान मुल्तान के पास कुछ मछलिहारों के हाथ से घायल होकर पकड़ा गया और वहो मर गया।

इसी साल कुछ सेना काँगड़े का क़िला लेने के लिए गई। बहुत दिन घेरने के पीछे क़िला मिलने वाला ही था कि बाग़ी के पकड़ने के लिए सेना वहाँ से बुला ली गई।

अकबर को विश्वास था कि गुजरात देश मे अब अशांति न फैलेगी, क्योकि उन्होंने भरसक अच्छा प्रबन्ध कर दिया था। परन्तु "रिपु रुज पावक पाप, इनहिँ न गनिए छोट करि"—यह कवि की उक्ति सत्य हुई। जिन लोगों ने मुद्दत तक शासन किया था, अब उनसे दूसरे के अधीन होकर न रहा गया; फिर सेना इकट्ठी होने लगी और देश में उपद्रव मच गया; लूट फूँक, मार धड़, का कोई ठिकाना नहो था, हर स्थान पर अराजकता छा गई।

अभी गुजरात की पहली लड़ाई से लौट कर छः महीने भी नहीं हुए थे कि उत्पात की ख़बर अकबर को मिली। समय बीतने से हानि होती थी, इस लिए बादशाह ने राजा भगवान-

दास को पहले भेजा और साँड़िनियों (ऊँटनियों) और घोड़ों पर कुछ चुनी सेना लेकर स्वयं पीछे से चले। रात दिन चलते चलते सीकरी से पाटन नगर तक का ८०० मील का फ़ासिला केवल ९ दिन मे पार कर दिया। वीर सैनिकों को युद्ध का रौ चढ़ा हुआ था, इस लिए नींद और भूख भी नहीं सताती थी।

बाग़ियों की सेना बीस सहस्र से कम नहीं थी, और मुग़ल सेना मे कोई तीन हजार सैनिक थे, परन्तु जितने थे सब वीर-रस मे भावित थे और पैर पीछे हटाने वाले न थे। बाग़ियों को कुछ तो अपनी सेना का घमण्ड, और कुछ यह ख़याल कि बादशाह बहुत दूर सीकरी मे हैं तब तक चैन से बैठो। यह नहीं जानते थे कि अकबर उनके शिर पर मौजूद थे।

उस समय बाग़ी लोग अहमदाबाद घेरे हुए थे जिसका गवर्नर अकबर का धात्रीसुत अज़ीज़ था। यदि अहमदाबाद मुग़लों के हाथ से निकल जाता तो गुजरात मे उनका पैर न जमता। इसी लिए अकबर इतनी शीघ्रता से वहाँ पहुँचे और बाग़ियों की सेना को बाहर से घेर लिया।

आज कल की लड़ाइयों मे यदि शत्रु की सेना सोती हुई मिल जावे तो देखते देखते उसका विनाश कर दिया जावे; परन्तु उन दिनों लोगों के दिलों मे वीररस अधिक था; जब तक शत्रु चौकस होकर लड़ने के लिए तैयार न हो जावे तब तक हथियार चलाना पाप समझा जाता था। इसी लिए शत्रु-दल को ग़ाफ़िल देख कर जुझाऊ बाजे बजाये गये। अब भी उन्हे

विश्वास नहीं होता था कि मुग़ल सेना सामने सज्जित खड़ी है, क्योंकि चौदह दिन पहले उनको हाल मिला था कि अकबर सीकरी में हैं और इतने दिनों में उनका वहाँ पहुँच जाना असंभव सा था। मुग़ल सेना में हाथी भी नहीं थे जिन्हें देख कर बादशाह के आने का अन्दाज़ा होता।

अस्तु, लोमहर्षण युद्ध हुआ जिसमें बाग़ी परास्त हुए और उनका सरदार मिर्ज़ा मुहम्मद हुसेन घायल होकर पकड़ा गया। मुग़ल सेना शत्रु से सावधान होकर अपने निज के काम में लगी; कोई सोता था, कोई दूसरों की मरहमपट्टी करता था, कोई नहाता धोता था। अकबर स्वयं नदी के किनारे मय कुछ साथियों के एक क़ालीन पर पड़े आराम कर रहे थे। इसी बीच में एक दूसरा बाग़ी, अख़्तियारुलमुल्क, अपनी ५००० सेना लेकर पहुँचा। इसके आते ही सबके रोंगटे खड़े हो गये, क्योंकि थकावट के मारे किसी में दम नहीं था। परन्तु वीरता का काम ही कठिन है, बाजे का शब्द सुनते ही फिर तैयार हो गये। पहले तीरों की वर्षा हुई, फिर मुग़ल सेना ने एक दम ऐसा दबाया कि शत्रु के बन्धन ढीले पड़ गये, कुछ भागे, कुछ मारे गये; मुखिया का मस्तक काट कर बादशाह के सामने रक्खा गया।

इधर जब यह दूसरा युद्ध छिड़ा तो राजा भगवानदास ने पहले युद्ध के क़ैदी मुहम्मदहुसेन का सिर इस लिए कटवा लिया कि लड़ाई की व्यग्रता में वह कहीं छुट कर भग न जावे और उत्पात पैदा करे।

देश मे फिर शांति फैला कर और अहमदाबाद के गवर्नर अज़ीज़ से मिल कर अकबर सीकरी को लौट गये।

बंगाल।

पहले पहल बख़्तियार ख़िलजी ने सन् ११९८—९ मे इस देश पर चढ़ाई करके दिल्ली की बादशाहत मे मिलाया था। कोई डेढ़ सौ वर्ष तक यह दिल्ली के अधीन रहा; फिर यहाँ स्वतन्त्र मुसलमान बादशाह होने लगे। दो सौ वर्ष के बाद यह शेरशाह के वंश वाले पठान बादशाहों के हाथ आया। कुछ दिन पीछे सुलेमानख़ाँ गवर्नर स्वयं बादशाह बन बैठा। यह बड़ा चालाक था। दिल्ली की ओर से जौनपुर मे जो गवर्नर रहता था उससे इसने मेल रक्खा और अङ्गीकार कर लिया कि बङ्गाल मे अकबर के नाम से ख़ुतबा पढ़ा जावेगा और उन्हीं का सिक्का चलेगा। जब तक सुलेमान जीवित रहा. उसने मुग़ल बादशाह को अप्रसन्नता का अवसर न दिया। परन्तु उसके मरते ही झगड़ा हुआ; मार पीट और वध की नौबत आई; अन्त मे दाऊद गद्दी पर बैठा। जहानलोदी नामक एक और सरदार था जिस से और दाऊद से कभी लड़ाई होती थी और कभी मेल रहता था। जब मेल होता था तो दोनों मिल कर मुग़ल बादशाह के प्रतिपक्षी हो जाते थे, जब फूट रहती थी तो दो मे से एक शरण माँगता था।

यह द्विविध भाव कब तक चल सकता था। अकबर ने

अपने गवर्नर मुनीमख़ाँ को लिखा कि जिस प्रकार बने बङ्गाल को अपने अधीन कर लो। लोदी ने कोई तीन लक्ष की नज़र गवर्नर के पास भेज दी जिससे वह कुछ ठंडा पड़ा, परन्तु फिर एक बड़ी सेना लेकर मय दाऊद के वह गवर्नर के इलाक़े पर चढ़ आया। यथाकथञ्चित् दोनों परास्त करके भगाये गये।

अकबर ने देख लिया था कि मुनीमख़ाँ में दृढ़ता नहीं है और विपत्ति के समय उसके हाथ पैर फूल जाते हैं। इस लिए उन्होंने राजा टोडरमल को पूरा वृत्त जानने के लिए भेजा। टोडरमल ने बङ्गाल की दशा की पूरी जाँच करके ब्योरेवार रिपोर्ट दी।

इसी बीच में मुनीमख़ाँ ने पटना पर चढ़ाई कर दी जहाँ दाऊद अपनी सेना के साथ पड़ा था। परन्तु इस लड़ाई में अकबर स्वयं नेता होना चाहते थे, इस लिए एक फ़र्मान भेज कर गवर्नर को रोक दिया कि उनके पहुँचने तक कोई नई काररवाई न हो। अब बादशाह अपनी सेना लेकर नावों के द्वारा चले, और प्रयाग व काशी होते हुए उस स्थान पर पहुँचे जहाँ गोमती नदी गंगा में मिलती है। यहाँ पर सेना छोड़ कर स्वयं गोमती के चढ़ाव की ओर नावों पर जौनपुर चले; मार्ग में दूत ने ख़बर दी कि जितना शीघ्र हो सके आपका बङ्गाल पहुँचना आवश्यक है। बेगमों और राजपुत्रों को जौनपुर भेज कर अकबर स्वयं लौट पड़े और बङ्गाल की ओर नावों पर बढ़े। सेना नदी के किनारे किनारे स्थलपर चलती थी। इस प्रकार शीघ्रता करते सात दिन में पटना पहुँच गये।

दूसरे दिन बादशाह सेना का प्रबन्ध देखने निकले; और यद्यपि शत्रु की ओर से गोलियों की बौछाड़ होती थी, तथापि स्थिरता के साथ सब देखते रहे। उसी दिन दाऊद के पास से गवर्नर के पत्र का उत्तर आया कि मैं मुग़ल बादशाह का प्रतिपक्षी नहीं हूँ; अभी तक केवल लोदी के बहकाने और तङ्ग करने से मैंने विरुद्ध क्रिया की थी, परन्तु उसे अपने कर्म का फल मिल गया है, (दाऊद ने लोदी को धोखा देकर मार डाला था); अब मैं मुग़ल बादशाह का वशवर्त्ती होने के लिए उद्यत हूँ।

अकबर को इस कपटी की चाल-बाज़ी का हाल मालूम था; उन्होने फिर पत्र लिखाया कि या तो मेरे राजसिंहासन के सामने आकर दण्डवत् करो, या स्वयं मुझसे द्वन्द्व-युद्ध करो, या अपने किसी वीर प्रतिनिधि और मेरे प्रतिनिधि से द्वन्द्व युद्ध कराओ, या दो हाथियों से युद्ध करा के अपनी वीरता का प्रमाण दो, नहीं तो तुम्हारी सेना तलवार से नष्ट की जावेगी।

प्रतीक्षा करने का काम नहीं था, अकबर ने कुछ सेना हाजीपुर का क़िला लेने के लिए भेजी जो पटना के समीप ही गंगा और गंडक के संगम पर था। थोड़ा सा युद्ध होकर क़िले पर विजय मिली।

क़िले की हानि से दाऊद का दिल टूट गया, फिर उसका साहस न रहा कि मुग़ल सेना से संग्राम करे। वह रात्रि को खिड़की से निकल कर नाव द्वारा भागा। उसका सेनापति गूजर-ख़ाँ मय सेना व हाथियों के स्थल द्वारा भागा। इस समय पठान

सेना मे ऐसा आतंक फैल गया कि खाईं ख़न्दक़ और सड़के मुरदों से भर गईं। जल्दी के कारण कोई नदी मे कूद पड़ा और वही रह गया, कोई पैरों के नीचे कुचल कर मर गया, बोझ से लदी नावे डूब गईं।

मुग़ल सेना मे ख़बर फैली; उसी समय हाथी पर चढ़ अकबर ने उनका पीछा करना चाहा, परन्तु अँधेरी रात के कारण मुनीमख़ाँ ने समझा बुझा कर रोक लिया। प्रातःकाल नगर मे प्रवेश करके और दो चार घड़ी मे उसका प्रबन्ध करके बादशाह शत्रु के पीछे चले। वर्षा का समय था; खेतों, दलदलो और नालों को पार करते और चढ़ी हुई पुनपुन नदी को उतर कर अकबर ६० मील तक चले गये; परन्तु इस दौड़ से कुछ लाभ न देख कर दो अमीरों को पीछा करने के लिए आज्ञा दी। जिन अमीरों ने गूजर ख़ाँ का पीछा किया था उन्होंने २६५ हाथी पकड़ लिये। मार्ग मे मुग़ल सिपाहियों को बड़ा धन मिला; रास्तो मे हीरा जवाहिरात से जड़ी तलवारें, कटारे, सोने की ज़ंजीरे, कड़े आदि पड़े थे। तालाबों और नदियों मे अच्छे अच्छे कपड़े मिले जिनमे सोने का काम था। इसके अलावा पटना मे बहुत बडा ख़ज़ाना मिला।

दरियापुर मे कई दिन रह कर और वहाँ का प्रबन्ध पूरा करके अकबर लौटे। युद्ध-सम्बन्धिनी एक कौंसिल (सभा) की गई जिसमे वाद-विवाद के पीछे यह निश्चय हुआ कि वर्षा काल के दुःखो मे भी युद्ध बन्द न हो। ख़ानख़ानां मुनीमख़ाँ बङ्गाल

का गवर्नर बना कर बीस सहस्र का सेनापति किया गया; और उसकी सहायता के लिए टोडरमल आदि धुरन्धर नियत किये गये। पहली जीत मिलने और पटना पर अमल कर लेने से सैनिकों का मन बढ़ा हुआ था, इस लिए अकबर ने युद्ध का भार सेनापति पर रख कर स्वयं जौनपुर की यात्रा की।

शाही सेना ने पठानों को हराना, पीछा करना, और एक के पीछे दूसरा क़िला लेना आरम्भ कर दिया। इस काम मे उन्हे खड़गपुर के संग्रामसिंह और गिद्धौर के पूरनमल आदि हिन्दू ज़मींदारों से बड़ी सहायता मिली। गढ़ी का भारी क़िला जिसके चारों ओर बरसाती पानी भरा था, दोनों ओर से घेर कर ले लिया गया। इससे पठानों की हिम्मत टूट गई। दाऊद गढ़ी से टाँडा को भागा, परन्तु वहाँ भी शाही झण्डा देख कर और सेना एकत्र करने के लिए उड़ीसा पहुँचा। प्रयत्न किया गया कि वह उड़ीसा मे युद्ध-सामग्री एकत्र न करने पावे और बहुत से राजद्रोही लोग जो इस समय गुजरात तक से आ गये थे उसे मिलने न पावे। कई स्थानों पर बाग़ी लोग इकट्ठे होकर बलवा करना चाहते थे; परन्तु कृतकार्य न हुए। अब कुछ दिनों के लिए शांति हो गई और मुग़ल सेना आराम करने लगी। बीच मे एक सेनापति मर गया जिससे मुग़ल सैनिक बेक़ाबू हो गये। टोडरमल के उद्योग से वे किसी प्रकार फिर क़ाबू हुए।

यहाँ का हाल सुन कर और कुछ सेना इकट्ठी करके दाऊद फिर बंगाल की ओर बढ़ा, मुग़लों की सेना भी उसी ओर

चली और सन् १५७५ ई० की ३ मार्च को जलेश्वर और मुग़लमारी के वीच दोनों सेनाएँ एक दूसरी के सामने आईं। बड़े मारके की लड़ाई हुई; क्योंकि दाऊद के लिए यही एक अवसर था कि बङ्गाल में फिर अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापित करे। इधर मुग़ल सरदार भी सोचते थे कि यदि हार हुई तो मुग़ल बादशाह की बदनामी के अलावा दाऊद फिर युद्ध करेगा और बंगाल का राज्य फिर मिलना कठिन हो जावेगा। दाऊद के सेनापति गूजरख़ाँ ने शाही सेना का एक भाग नष्ट भ्रष्ट करके उसके सरदार को यमलोक भेज दिया। तब दूसरी ओर झुका, जहाँ ख़ानख़ाना ने भी सहसा अपना घोड़ा बढ़ाया, परन्तु कई प्रेमी नौकरों ने कूद कर घोड़े का मुँह फेर दिया; और अपने बुड्ढे मालिक को रणभूमि से बाहर निकाल लिया। मुग़ल सेना में त्राहि पड़ गई और सैनिक लोग इधर उधर भागने लगे।

मुग़ल सेना की यह दशा देख पठान सैनिक लूट मार में लग गये। उसी समय राजा टोडरमल ने वीर-रस से भरे कड़खे सुना कर फिर मुग़ल सैनिकों को उद्यत किया। गूजरख़ाँ मारा गया और दाऊद भगा। टोडरमल और कई अमीरों ने पीछा करना चाहा, परन्तु सिपाही थक गये थे इसलिए मुँह मोड़ने लगे। ख़ैर, किसी तरह दाऊद का पीछा किया गया। उसने संधि करना स्वीकार किया।

दूसरे दिन धूमधाम से दरबार हुआ और दाऊद ने संधिपत्र लिख दिया, परन्तु राजा टोडरमल समझ गये कि यह सच्ची

संधि नहीं है और अवसर पाकर दाऊद फिर सिर उठावेगा। संधि हो जाने पर मुनीमखाँ ने गौडनगर मे अपनी राजधानी रक्खी, परन्तु यहा फसली ज्वर का ऐसा वेग था कि हजारो हिन्दू और मुसलमान काल-कवल हो गए। शव उठा उठाकर खन्दको मे फेंक दिये जाते थे, गाडना और फूँकना कहा तक किया जावे। मुनीमखा की भी मृत्यु हो गई। यह सरदार न तो बडा वीर ही था और न राजकाज ही मे दृढ था, परन्तु हुमायूँ के समय से मृत्यु पर्य्यन्त पक्का राजभक्त रहा था, इसी लिए अकबर इसका बडा मान करते थे।

मुनीमखाँ के मरते ही दाऊद फिर उभड पडा, और एक के बाद दूसरा किला लेने लगा, उडीसा के शाही गवर्नर को कपट करके मार डाला, और चारो ओर से पठानो को उभाड दिया। मुनीमखाँ के स्थान पर पजाब का गवर्नर हुसेन कुली आया, जो किजिलबाशी ईरानी था। किजिलबाशियो और मुगलो से सदा का वेर चला आता था, इसलिए मुगल सैनिक इसकी आज्ञा मे नही रहते थे। इसी गडबड मे दाऊद ने गढी और टाँडा आदि अच्छे किले फिर ले लिये। अकबर ने किजिल-बाशी के स्थान पर पटना के गवर्नर मुजफ्फरखाँ को भेजा जिसने शांति फैलाई। राजा टोडरमल ने दाऊद का पीछा करके पकड लिया। इस कपटी पठान का मस्तक काट कर बादशाह के पास भेजा गया, और बगाल पूर्णतया मुगल राज्य मे आया।

चित्तौरगढ़ की प्रथम लड़ाई।

अकबर का नियम था कि जब कभी कोई बड़ी लड़ाई होने वाली होती थी तो वे शिकार के बहाने उस देश में जाकर वहाँ का रँग ढँग लेते थे। इसी नियम के अनुसार वे अपनी व अपने सामन्तों की चुनी सेना लेकर शिकार के लिए राजपूताने के इर्द गिर्द पहुँचे। उनके साथ में चित्तौर के राना उदयसिंह का कनिष्ठ पुत्र शक्र भी था। एक दिन अकबर ने हँसते हँसते उससे कहा कि तुम्हारा बाप हमारा वशवर्त्ती नहीं होता, इसीलिए हम उस पर चढ़ाई करेंगे; तो बताओ उस समय तुम हमको क्या सहायता दे सकोगे। शक्र ने भागने के अतिरिक्त अन्य उत्तर न दिया, उसने जाकर अपने बाप से सब हाल कहा और उसे सचेत कर दिया। अकबर को भी जल्दी पड़ी कि राना को युद्ध-सामग्री एकत्र करने के लिए अधिक समय न मिले।

सितम्बर सन् १५६७ ई० में चढ़ाई का यथार्थ काम प्रारम्भ हुआ। मुग़ल सेना सिवीसूपर के क़िले की ओर बढ़ी। यह क़िला राना उदयसिंह का था और आगरे से कोई १२० मील नैर्ऋत्य कोण में था। इस क़िले की रक्षा रनथम्बौर के राय सुर्जनहाड़ा की सेना के हाथ में था; शाही सेना का आगमन सुन कर यह सेना रनथम्बौर को चली गई। अकबर ने इस स्थान पर दो दिन रह कर लड़ाई की सामग्री एकत्रित की। कोठा में मुहम्मदख़ाँ को नियत करके शाही सेना गागरून

स्थान को बढी जहा कुछ सैनिक भेजे गये कि मालवा देश से शत्रुओ को भगावे।

अब बादशाह तीन चार हजार सवार सेना लेकर चित्तोर की ओर बढे। थोडी सेना ले जाने का आशय यह था कि राना किले से बाहर निकल कर युद्ध करे, परन्तु उसमे अपने पूर्व्व-पुरुष रानासागा की सी हिम्मत नही थी। उसने जयमल को चित्तौरगढ की रक्षा का भार देकर अर्वली पहाड का रास्ता लिया।

जिस दिन मुगल सेना ने चित्तौरगढ के सामने अपना कैम्प डाला, उस दिन आँधी, वर्षा, बिजली का घोर उत्पात हुआ, ऐसा ज्ञात होता था कि महाराज इन्द्र उस आगामी बुराई की सूचना देते थे और राना के कुल-देवता सूर्य्य को मेघो से छिपा कर उसका अस्वातन्त्र्य प्रकट करते थे। दूसरे दिन से क्षेत्राव-लोकन होने लगा, अकबर घोडे पर सवार, पैमायश करने वालो को स्थान दिखलाते, आज्ञा देते, और सेनाध्यक्षो को स्थान स्थान पर नियत करते, पहाडी के इर्द गिर्द घूमते थे। कुछ सैनिक चारो ओर बाहर भेजे गये कि गावो को लूटे और उजाड़े, और यदि राना का कुछ पता मिले तो उसे घेर कर पकडे।

किला घेरने का असली काम प्रारम्भ हुआ, खान्-ए-आलम और आदिलखाँ आदि मुगल सैनिक बडे जोश के साथ अपने अपने काम मे लगे। उस समय जितना चाव बादशाह के हृदय मे था उससे अधिक सैनिको मे था, सबकी उत्साह-शक्ति बहुत

बढ़ी हुई थी, यहाँ तक कि बादशाह की आज्ञा भी कभी कभी दब जाती थी। सैनिक लोग मनमाना काम करते थे और क़िले से छूटे हुए गोलों से नष्ट होते थे।

इन बुराइयों को देख कर अकबर ने निश्चय किया कि सब काम क़ायदे से होना चाहिए और धावा करने के तीन नियत स्थान रखने चाहिएँ। लकुहटा फाटक पर स्वयं बादशाह, हसनख़ाँ और राजा पत्रदास रहे; दूसरे स्थान पर राजा टोडरमल और शुजाअतख़ाँ नियत किये गये; और तीसरे स्थान पर ख़्वाजा अब्दुल मजीद, आसफ़ख़ाँ, और वज़ीरख़ाँ रहे।

क़िला तोड़ने के लिए पहले बड़े बड़े टेढ़े और लहरदार नाले खोदे गये, जिनमें कोई पाँच हज़ार मज़दूर रोज़ लगते थे। इस काम में ढेर के ढेर रुपए व्यय होते थे और औसत में दो सौ आदमी रोज़ मरते थे जिनकी लाशें दीवारों में चुन दी जाती थीं। द्रव्य के लोभ से नये नये आदमी भरती हो जाते थे, ज़बरदस्ती कोई नहीं पकड़ा जाता था। मज़दूरों की रक्षा के लिए लकड़ियों के पोल धूह बनाये जाते थे जिनके ऊपर चमड़ा मढ़ा जाता था और भीतर मिट्टी भर दी जाती थी। ज्यों ज्यों काम आगे बढ़ता था, यह ढाल के समान धूह आगे सरकाये जाते थे। कुछ दूर तक यह बड़े नाले खुले रहते थे, फिर क़िले की दीवार के नीचे ही नीचे खोद कर सुरंग रूप में कर दिये जाते थे जिनमें बारूद भर कर बाहर से आग लगा दी जाती थी। बादशाह के कैम्प से जो नाला खोदा गया था

उसमे बराबर बराबर दस सवार दौड़ते जा सकते थे; गहराई भी इतनी थी कि भाले और बरछे लेकर हाथियों की पीठ पर लोग जा सकते थे। इस काम मे तीन सप्ताह का समय लगा और हज़ारों जीव स्वाहा हो गये। व्यय का कुछ ठिकाना ही न था, तब भी बादशाह की हिम्मत नहीं टूटती थी; वे कहते थे कि चित्तौरगढ़ को तोड़ कर ही दम लूँगा।

दो बड़े बड़े सुरंग खोद कर एक दूसरे के पास तैयार हुए और दोनों मे बारूद भरी गई। स्वयं अकबर का निश्चय था कि दोनों का काम अलग अलग रक्खा जावे और उनमे एक दूसरे के बाद आग लगाई जावे। परन्तु कबीरख़ाँ ने जिसके मातहत यह काम रक्खा गया था, सोचा कि दोनों मे एक साथ आग दी जावे। जिससे संयुक्त प्रभाव पड़े। निदान नालों मे शाही सेना अस्त्र शस्त्र से सज्जित होकर एकत्र हुई और सुरंग मे आग लगा दी गई। थोड़ी देर पीछे एक सुरंग उड़ा और चित्तौरगढ़ की अभेद्य दीवार टूट गई। उसी के साथ सैकड़ों राजपूत वीर पतंगों की तरह आकाश मे उड़ने लगे। जब कुछ शांति हुई तो मुग़ल सेना ने आक्रमण किया, और उधर से अन्य राजपूत भी आ कर जम गये। बड़ा लोमहर्षण युद्ध हो रहा था कि दूसरा सुरंग भी उड़ा। चारों ओर से बारूद के धुवे का मण्डल छा गया। राजपूत और मुग़ल सैनिक उड़ उड़ कर और जल जल कर समाप्त हो गये। सुरंग फूटने का शब्द पचास पचास कोस चारों ओर सुनाई दिया; पत्थरों के बड़े बड़े टुकड़े

कोसों तक उड़ गये, और मनुष्यों के समूह के समूह नष्ट हो गये ।

ऐसे कराल उत्पात से अप्रमेय हानि सह कर भी अकबर की दृढ़ता न टूटी । उन्होंने निषेध कर दिया कि कोई काम बे क़ायदे न हो; और स्वयं हर स्थान पर पहुँच कर सब निरीक्षण किया । यद्यपि उनका मन्तव्य यह था कि सबके साथ शांति-पूर्वक रहना चाहिए, तथापि यश के लिए, राजपूतों का सिर नीचा करने और अपना बोलबाला करने के लिए उन्होंने ठान लिया कि चाहे जिस प्रकार हो चित्तौर को अपना वशवर्त्ती अवश्य करूँगा । उन्होंने कहा कि यदि अजमेर के पीर मुईनुद्दीन चिश्ती की कृपा से यह काम पूरा हो गया तो पैदल पावँ वहाँ की ज़ियारत करूँगा ।

इस समय का साधन भी योग्य था । थके माँदों को प्रसन्न करना, कादरों को हिम्मत दिलाना, और दुखियों की सहायता करना, सब अकबर में था । उनको देख कर सैनिकों के हृदय मे नवीन पराक्रम पैदा हो जाता था और वे अपना जीवन तृणवत् समझते थे । यह भी प्रभाव और सौभाग्य ही की बात थी कि बादशाह के शरीर पर एक भी क्षत न आता था । एक बार पहाड़ी का कोई ऊँचा भाग उड़ाया जाता था, और उधर से गोलियों और गोलों की वृष्टि हो रही थी; तोप का एक भारी गोला आकर अकबर के समीप फूटा जिससे बीस आदमी चित्त हो गये, परन्तु उनका शरीर अक्षत रहा । दूसरे समय उनके

पास ख़ान-ए-आलम खड़ा था जब कि एक गोली सन-सनाती हुई उसके शरीर में लगी। बकतर कट गया, परन्तु उसके कोई घाव न हुआ। उसने निश्चय किया कि बादशाह ही के प्रभाव से उसकी जान बची।

इतना ही नहीं, किन्तु अकबर कभी कभी बन्दूक़ लेकर क़िले के कुछ आदमियों को मार भी गिराते थे। एक बार लकुहटा फाटक के समीप घूमते उन्होंने देखा कि एक सैनिक ने उनके कई आदमियों को निशाना लगा कर मार गिराया है। इसपर उन्होंने बन्दूक़ ली और उस वैरी पर ऐसा निशाना लगाया कि वह उसी जगह मृतक हो गया। यह पुरुष निशानेबाजों का सरदार इस्माइल था जो राना की ओर से लड़ता था।

उधर टोडरमल और क़ासिमख़ाँ भी बड़े साहस से अपना काम कर रहे थे। राजपूतों के लाख उपाय करने पर भी खाईं का खोदना और दीवारें का बनाना बन्द न होता था। कभी कभी बारह बारह पहर बराबर युद्ध होता था और ज्यों ज्यों मुग़ल सैनिक क़िले के निकट पहुँचते जाते थे, त्यों त्यों युद्ध की गर्मी और भी बढ़ती जाती थी। क़िले की दीवार कई जगह टूट गई थी।

२३ फ़रवरी सन् १५६८ ई० की रात्रि को अंतिम बड़ा धावा किया गया, परन्तु राजपूत सैनिक भी सचेत थे। घोर युद्ध हुआ जिसमें दोनों ओर की अमित हानि हुई और हार जीत का निश्चय न हुआ। इसी बीच में कुछ राजपूत सैनिकों ने यह उद्योग किया कि जहाँ जहाँ दीवार में संधि है वहाँ

कपड़े, रुई, तेल, लकड़ी आदि डाले जावें, और जिस समय मुग़ल सेना आगे बढ़े, उनमें आग लगादी जावे। राजपूत सेना का अध्यक्ष जयमल स्वयं बकतर पहने, मशालों के उजाले में खड़ा क़िले की रक्षा के लिए यह सब उपाय कर रहा था। उधर अकबर भी अपने स्थान से यह लीला देख रहे थे। राजपूत वीर का यह प्रबन्ध देख कर उन्होंने संग्राम नामक अपनी बन्दूक़ ली और ऐसा निशान लगाया कि गोली जयमल के माथे पर पड़ी। वीर राजपूत उसी स्थान पर जूझ गया।

जयमल के गिरते ही सबके हाथ पैर ढीले हो गये। जब उसका शरीर बस्ती में गया तो सर्वत्र उदासी छा गई, वीरों के हृदय से भी उत्साह जाता रहा। एक घंटा भी नहीं बीतने पाया था कि क़िला सुनसान सा हो गया। कुछ ही देर में क़िले के भीतर से अग्नि की लाल लाल ज्वालायें निकलने लगीं जिससे मुग़ल सेना को बड़ा विस्मय हुआ। उस समय भगवान्-दास ने अकबर से कहा कि अब होशियार हो जाइए; राजपूतों ने जोहार की रस्म की है।

अपना व अपने कुल व देवताओं का मान रखने के लिए राजपूतों का अन्तिम संस्कार जोहार था। शत्रु के हाथ में पड़ने की अपेक्षा वीरजननी और वीरपत्नी राजपूतनियाँ अपने प्राण दे देना अधिक शुभ समझती थीं। चन्दन की एक बड़ी चिता लगाई गई जिसमें सुगन्धि-युक्त तैल डाला गया; जब चिता पूर्ण रूप से प्रज्वलित हुई तो उसमें नौ रानियाँ,

पाँच लड़कियाँ, दो छोटे बालक और बड़े राजपूतों तथा सेनापतियों की पत्नियाँ रुचिपूर्वक कूद पड़ीं और भस्म हो गईं। इसके बाद राजपूत वीर केसरिया वस्त्र पहन कर और पान खा कर एक दूसरे से हर्ष-पूर्वक मिले और प्राण अर्पण करने के लिए तैयार हो गये।

इस ख़बर को पाकर मुग़लसेना रात भर सुसज्जित खड़ी रही, परन्तु जब राजपूत लोग न निकले तो प्रातःकाल होते ही क़िले में घुसने के लिए मुग़ल सेना चली। आसमानशिकोह नामक हाथी पर चढ़ कर अकबर भी चले। पहले तो किसी ने सामना नहीं किया; परन्तु नगर के भीतर पहुँचते ही रक्त-प्रवाह होने लगा। सिखलाये हुए हाथी छोड़ दिये गये जो लोगों को पकड़ पकड़ कर और कुचल कुचल कर विध्वंस करने लगे। तीनों स्थानों में अर्थात् राना के महल के समीप, महादेव के मन्दिर पर और रामपुरा फाटक पर बड़ी भयानक मार काट हुई। समग्र नगर विध्वंस कर दिया गया, पृथ्वी रक्त से सींच दी गई; बाज़ारों में, गलियों में, घरों में मुर्दे नहीं समाते थे। राजपूत लोग सिंहवत् लड़ते और वहीं प्राण अर्प्पण करदेते थे। सबेरे से तीसरे पहर तक यह महाघोर संग्राम जारी रहा और जब कोई राजपूत न रह गया, तब बन्द हुआ। इस युद्ध में एक लाख से अधिक सैनिक और नगरवासी काम आये। राजपूतों का आधिपत्य छिन गया और चित्तौर के क़िले में क्षत्रियों की सूर्याङ्कित ध्वजा के बदले मुग़लों का हरा झण्डा फहराने लगा।

इस प्रकार अपनी प्रतिज्ञा पूरी करके अकबर तीसरे पहर कैम्प को लौटे और तीन दिन रह कर आसफ़खाँ को वहाँ का गवर्नर बनाया। इसके पश्चात् अपनी मिन्नत पूरी करने के लिए अजमेर की ओर बढ़े।

राना प्रताप की लड़ाई।

अकबर का राज्य उत्तरीय भारत में पश्चिम से पूर्व तक हो गया; कोई भारी शत्रु शेष न रहा। राजपूताने के बहुत से राजा और सरदार वशवर्ती हो गये; कई एक ने अपनी लड़कियाँ ब्याह दीं। इन लोगों का मान भी मुग़ल दर्बार में अधिक हो गया, किसी किसी को बादशाह की ओर से नया इलाक़ा दिया गया। अम्बर के राजपूत राजा भगवानदास व उनका पुत्र राजा मानसिंह बड़े बड़े उच्चपदों पर नियत किये गये।

परन्तु सब राजपूतों की यह दशा नहीं थी। ऊपरी दिखाव के लिए यह लोग मित्र या उदासीन भाव रखते थे, पर भीतर ही भीतर शत्रु भाव से परितप्त हुए जाते थे। मेवाड़ के राजा उदयसिंह ने चित्तौरगढ़ खोकर भी मुग़ल बादशाह का वशवर्त्तित्व न ग्रहण किया था और अरावली पहाड़ों पर भ्रमण करते करते सन् १५७२ ई० में अपना जीवन समय बिता दिया था। उदयसिंह का पुत्र राना प्रतापसिंह अपने पिता की तरह हठी और उससे अधिक वीर था, इसके शरीर में अपने पितामह राना साँगा का वीर रक्त प्रवाह करता था। इसने भी

ठान लिया कि मुसलमान शासक के सामने मस्तक नहीं झुकाऊँगा।

प्रताप की देखादेखी अन्य राजपूत सरदारों ने भी स्वतन्त्रता धारण कर ली; जब तक एक परास्त होता था, दूसरा सिर उठाता था। एक स्थान पर शांति फैलाते फैलाते अन्यत्र अशांति उत्पन्न होती थी। यह लीला देख कर अकबर ने भी दृढ़ निश्चय कर लिया कि चाहे जिस प्रकार हो, राजपूतों को अपने अधीन कर लेना उचित है।

जोधपुर के चन्द्रसेन ने सिवाना के क़िले से उत्पात आरम्भ किया। मुग़ल सेना की बड़ी हानि होकर यह क़िला हाथ मे आया। दौदा को अकबर ने चुनारगढ़ का रक्षक बनाया था। उसने बूँदी मे बलवा कर दिया। अकबर ने उसी के पिता सरजन हाड़ा को उसका मान तोड़ने के लिए भेजा। धन्य रे वीर धर्म! और धन्य नमक की अदाई। पिता ने पुत्र को परास्त करके बादशाह से उसका अपराध क्षमा कराया।

अब राना प्रताप की बारी आई। प्रताप ने देख लिया कि इस समय (१५७५—६ ई० मे) बंगाल मे लड़ाई छिड़ी है, गुजरात मे भी शांति नही, और शाही सेना चारों ओर बँटी हुई है। इसी लिए उसने छेड़ छाड़ प्रारम्भ कर दी। उसके पास कई एक अच्छे क़िले उदयपुर से लेकर अरावली पहाड़ियों तक थे जिनमे से दो प्रधान क़िले कोंभलमीर और गोगंडा थे। इन्ही दो को विशेषत कोभलमीर को प्रताप ने मज़बूत किया।

उसके सैनिकों मे से कुछ राजपूत थे, कुछ भील आदि जंगली मनुष्य थे, जिनके लिए पहाड़ियों पर का चढ़ना उतरना खेल सा था, और अल्प संख्या मे मुसलमान भी थे जो मुग़ल बादशाह से बाग़ी हो गये थे। प्रताप जानता था कि मेरी सेना इतनी बड़ी नही कि खुले मैदान मे मुग़ल-सेना का सामना करे, इस लिए वह घात लगा कर राजपूताना के शाही ज़िलों मे लूटमार करके फिर क़िले को भग जाता था।

अकबर को बड़ी चिन्ता हुई कि इस रातपूत को कैसे हटाऊँ। उन्होने समझ लिया कि जिस प्रकार राजपूतों मे भाई भाई का प्रेम होता है उसी तरह वैर भी बढ़ता है। यदि कोई राजपूत सरदार प्रताप से चिढ़ जावे तो अच्छा काम बनेगा। इसके अलावा अरावली की विषम पहाड़ियों मे सिवा राजपूतों के और किसी का काम भी नही था। यह सत्य है कि अकबर की सेना मे अफ़ग़ानिस्तान आदि पहाड़ी देशों के सैनिक बहुत थे जो विषम से विषम स्थलों मे भी युद्ध कर सकते थे; तथापि अरावली का सच्चा सच्चा हाल जैसा राजपूतों को मालूम था वैसा और किसी को नही था।

उस समय अकबर के दरबार मे अम्बर का राजा मानसिंह था जिसने कई स्थानों मे अपनी शूरता और राजभक्ति दिखाई थी। अकबर ने मानसिंह ही को राजनैतिक दूत कर्म पर राना प्रताप के यहाँ भेजा। दक्षिण देश से लौटते हुए राजा मानसिंह ने राना प्रताप को मुलाक़ात के लिए लिखा। उस समय राना

कोभलमीर मे था, उसने मानसिंह का स्वागत किया । मानसिंह आकर भोजन के लिए बैठे, प्रताप का पुत्र अमर उपस्थित था, प्रताप स्वयं नहीं आया और शिरोवेदना के बहाने बाहर ही बाहर रहा । मानसिंह को यह बात अच्छी न लगी, एक-आध बार पूछने के बाद उसने बड़े गम्भीर भाव से कह दिया कि राना के सिर दुखने का कारण मैं जानता हूँ, परन्तु यह असाध्य रोग है । यदि राना ऐसे लोग नहो मेरे साथ बैठेंगे ते कौन बैठेगा । राना ने उत्तर मे कह दिया कि मैं तुरकों के सालों ससुरों के साथ भोजन नहीं करूँगा । जब तुमने अपनी बहन बेटी मुसलमान को दे दी ते उसके साथ खा भी लिया होगा ।

मानसिंह की फूफू अर्थात् भगवानदास की बहन को अकबर ने व्याह लिया था, इसी से राना ने ऐसा कठोर वचन कहला भेजा । मानसिंह से यह अपमान न सहा गया. उसने चावल के कुछ सीथ पगडी मे रख लिये और उठ कर कहा कि "आपकी मर्य्यादा ही के बचाने के लिए मैंने अपनी मर्य्यादा तोड़ी और मुसलमान बादशाह को अपने घर की लड़की दे दी; परन्तु यदि आप हमारे ऐसे विरोधी हैं ते इसका फल आगे मिलेगा" । मानसिंह के चलते चलते राना प्रताप भी पहुँच गया; मानसिंह ने कहा, "राना प्रतापसिंह, यदि मैं तुम्हारा गर्व न तोड़ दूँ ते मुझे मानसिंह न कहना ।" प्रताप ने निर्भय उत्तर दिया कि मैं तुम्हारा सामना करने के लिए

तैयार बैठा हूँ। इसी बीच मे किसी और ने कह दिया कि अच्छा जब आना तो अपने फूफा (अकबर) को भी ज़रूर साथ लाना।

इस विवाद का हाल सुन कर अकबर को प्रसन्नता हुई; उन्होंने मानसिंह को 'फ़रज़न्द' (पुत्र) की पदवी देकर राना से लड़ने के लिए उद्यत किया। मानसिंह के साथ इतिहास-लेखक अब्दुल-क़ादिर बदौनी भी गया, जिसने इस युद्ध का पूरा वर्णन फ़ारसी मे लिखा, इसकी लेखशैली का वर्णन पीछे से होगा, अभी केवल उसके युद्ध-वर्णन का सार सुनिए।

"मानसिंह और आसफ़ख़ाँ निर्विघ्न चलते चलते मण्डलगढ़ होकर हल्दी-घाट पहुँचे जो गोगंडा से १४ मील है। राना युद्ध के लिए निकला। मानसिंह हाथी पर सवार बीच मे था, इसके इर्द गिर्द बहुत से वीर थे। सबके आगे कोई ८० नव-युवको की सेना थी। पीछे के भाग मे मेहतरख़ाँ की आज्ञा चलती थी। राना के तीन सहस्र सवार दो दलों मे निकले, एक मे हकीम सूर पठान सेनापति था। भूमि-विषमता और पहाड़ी झाड़ी-झंखड़ों के कारण मुग़ल सेना का अगला भाग घबड़ा गया। बहुत से राजपूत सैनिक (मुग़ल सेना वाले) भेड़ों की तरह भाग कर सेना के दक्षिण भाग मे आये। उस समय मैं (बदौनी, इतिहास-लेखक) कुछ उत्तम योद्धाओं के साथ आगे ही था। मैंने आसफ़ख़ाँ से पूछा कि अपनी सेना और शत्रु की सेना के राजपूतों मे कोई भेदजनक चिह्न नहीं दिखाई देता; अब किस तरह चलाऊँ? उसने उत्तर दिया कि तीर चलाते

जाओ, चाहे जिस पक्ष वाला राजपूत गिरे, मुसलमानी धर्म को लाभ पहुँचेगा। निदान हम लोगों ने तीर चलाना आरम्भ कर दिया; मनुष्यों की घनी राशि मे कोई तीर निष्फल नहीं जाता था। मेरा हाथ उसी दिन सफल हुआ और काफ़िरों से लड़ने का फल मिला।

"उस दिन वरहा के सैयदों ने रुस्तम का सा युद्ध किया। राना की सेना ग़ाज़ीख़ाँ पर टूट पड़ी और प्रवाह की तरह उसे बहा ले गई। सिकरी का शेख़ मंसूर भागा, पीछे से श्रोणि-भाग मे तीर लगा। गाज़ीख़ाँ का अँगूठा घायल हो गया, इस लिए वह यह कह कर भागा कि जब शत्रु से वश न चले तो रसूल (मुहम्मद) ने भागने की आज्ञा दी है। जो पहले भागे थे वे अब तक दस बारह मील निकल गये होंगे। मेहतरख़ाँ ने आगे बढ़ कर झूठा हल्ला कर दिया कि और शाही सेना पीछे से आ रही है। ग्वालियर के राजा ने मानसिंह के राजपूतों को ऐसा काटा कि कुछ वर्णन नहीं हो सकता।

"राना के हाथियों का सामना शाही हाथियों से हुआ जिनमे दो गिर गये। हाथियों का नायक हुसेनख़ाँ गिरा दिया गया, परन्तु उसी समय मानसिंह अपने हाथी से कूद कर नायक के हाथी पर जा बैठा। मुग़ल सेना के एक हाथी से और राम-प्रसाद नामक राना के हाथी से मुठभेर हो गई। दोनों एक दूसरे को पछाड़ते थे। इसी बीच मे राना का महावत तीर से घायल होकर गिर गया। शाही महावत अपने हाथी से कूद

कर रामप्रसाद के मस्तक पर जा बैठा। इससे राना का जी उदास हो गया, और उसकी सेना में गड़बड़ी मच गई।

"चित्तौर के जयमल का पुत्र, ग्वालियर का राजा रामसाह और उसका पुत्र, जिन्होंने युद्ध में बड़ा दुःख दिया था, नरकगामी हुए (हिन्दू शास्त्र के अनुसार ऐसे वीर सूर्य्यमण्डल भेद कर स्वर्ग को जाते हैं; परन्तु बदौनी का तअस्सुब मृत्यु के बाद भी इन वीरों के पीछे पड़ा रहा। कदाचित् ग़ाज़ीखाँ की तरह भागने से स्वर्ग मिलता हो)।

"राना तीरों से घायल हुआ और हार कर उन्हीं पहाड़ियों को भागा जहाँ चित्तौर की लड़ाई के बाद गया था। मारे गर्मी के आग सी बरसती थी (जून का महीना सन् १५७६ था); हम लोग प्रातःकाल से दोपहर तक लड़े थे। कोई ५०० आदमी मरे जिनमें १२० मुसलमान और शेष हिन्दू थे। गर्मी के दुःख से किसी ने राना का पीछा न किया।

"दूसरे दिन यह जाँच करते हुए कि रणक्षेत्र में किसने क्या वीरता की, हम लोग गोगंडा पहुँचे। चुने राजपूत सरदारों और मन्दिरों के पुजारियों ने अपनी स्त्रियों को मार कर क़िले के बाहर सम्मुख युद्ध में नरक के नायकों को अपने प्राण दे दिये। इसके पश्चात् मुग़ल सेना ने रात्रि के छापा से रक्षा का उपाय किया।

"इस समय वहाँ भोजन की बड़ी तंगी थी, पहाड़ी स्थान में कुछ मिलता भी नहीं था, ख़ैर बेस्वादु आम खा पीकर काम

चलाया गया। उसी समय शाही दरबार से एक अफ़सर आया और लड़ाई का हाल जान बूझ कर दूसरे दिन चला गया, उसे यह बात नापसन्द हुई कि राना का पीछा न किया गया। अब रामप्रसाद हाथी के भेजने का विचार हुआ। शाही नौकरों ने कई वार उसे राना से माँगा था, परन्तु उसने इन्कार कर दिया था। मेरे साथ मय ३०० रक्षकों के हाथी भेजा गया। मार्ग मे जो लोग मानसिंह की विजय का हाल सुनते थे उन्हे विश्वास ही न होता था। अम्बर नगर दस मील रह गया होगा जब हाथी दलदल मे फँस गया। ज्यों ज्यो निकलने का उद्योग करता था त्यो त्यो और भी धँसता जाता था। मुझे कभी ऐसा मौक़ा नही पड़ा था इस लिए मुझे घबराहट थी। परन्तु गॉव वालों ने आकर बतलाया कि इसके पिछले वर्ष भी एक शाही हाथी फँस गया था और उसके निकालने के लिए बहुत सा पानी दलदल मे छोड़ा गया था, जिससे नीचे की मिट्टी ढीली होकर पैर न पकड़े। इसी प्रकार रामप्रसाद हाथी निकाला गया। तीन चार दिन अम्बर मे रह कर मैं फ़तेहपुर सीकरी पहुँचा जहाँ राजा भगवानदास ने मुझे बादशाह के दर्शन कराये।

"बादशाह ने उस हाथी का नाम पीरप्रसाद रक्खा, और मुझ से लड़ाई का सचा सचा हाल पूँछ कर और प्रसन्न होकर एक मुट्ठी अशर्फ़ियाँ दी। उनसे बिदा होकर और उन्ही की आज्ञा से मैं शेख़ अब्दुन्नवी के दर्शनार्थ गया।"

टाड साहब के राजस्थान मे राना के भागने का वृत्त और

तरह से लिखा है। उसमें लिखा है कि चैतुक घोड़े की पीठ पर राजा ने दिन भर लड़ाई की थी। रात्रि के समय जब वह भगा जाता था तो दो मोग़ल सैनिकों ने उसका पीछा किया। मार्ग मे एक पहाड़ी नाला मिला जिसे चैतुक कौतुक से कूद गया; पीछा करने वालों को कुछ देर लगी, इससे राना कुछ आगे निकल गया। परन्तु घोड़े और सवार दोनों ने दिन भर पूरा काम किया था, इस लिए पीछा करने वाले पास पहुँच गये। प्रताप के कान मे शब्द आया 'हो नील घोड़े का असवार!' प्रताप ने पीछे फिर कर देखा तो एक ही आदमी था, और वह प्रताप का भाई शक्र था।

शक्र से और प्रताप से शत्रुता थी; शक्र मुग़ल सेना मे मिल गया था और अपने भाई से लड़ने के लिए मानसिंह के साथ आया था। परन्तु नीले घोड़े के असवार को भागते देख कर उसके हृदय मे भ्रातृस्नेह की उमंगें आने लगीं और विरोध का विचार भूल गया। पीछा करने वालों के साथ वह भी दौड़ा, परन्तु इस लिए कि पकड़ने वालों को रोके। मार्ग मे उसने औरों को मार गिराया और प्रताप से जी खोल कर मिला। इसी स्थान पर चैतुक घोड़ा गिर कर मर गया। राना ने उसके स्मरणार्थ वहाँ एक चबूतरा बनवा दिया।

अपने भाई के घोड़े पर चढ़ कर राना पहाड़ी रास्तों में घुस गया; इस समय उसके घावों से रक्त चलता था, परन्तु मन मे यही विचार था कि फिर सेना एकत्र करके युद्ध करूँगा।

अकबर ने शक्त के भ्रातृस्नेह का हाल सुना और इस उदार कर्म से प्रसन्न होकर उसका बड़ा सम्मान किया।

अभी राना प्रतापसिंह के घाव भी नहीं अच्छी तरह भरने पाये थे कि फिर उसने अपने राज्य मे दौरा लगाया और दूसरी लड़ाई के लिए सेना एकत्रित की। इस बार अकबर ने शहबाज़खाँ को भेजा जिसने १५७८ ई० मे कोभलमीर का क़िला घेर लिया। युद्ध करना व्यर्थ जान कर संन्यासी के वेष मे राना निकल गया और पहाड़ियों मे विचरने लगा। गोगंडा और उदयपुर भी ले लिये गये। शहबाज़खाँ ने देश की रक्षा और प्रताप के रोकने के लिए मैदान मे और पहाड़ियों पर बहुत से थाने बनवा कर उनमे कुछ कुछ सिपाही नियत कर दिये। इस कारखाई से प्रताप की स्वतन्त्रता मे तो अवश्य विघ्न पड़ा, परन्तु वह किसी प्रकार मानने वाला राजपूत नही था। जब कभी अवसर पाता था तब कुछ आदमी लेकर उत्पात मचा देता था और फिर अपने गुप्त स्थानों को चल देता था।

नोअर नामक एक इतिहास-लेखक ने राना के बारे मे यों लिखा है, "यह बात भूलने के योग्य नही कि सत्रहवी शताब्दी तक भी दिल्ली के बादशाह और अरावली पहाड़ी के लोगों मे कोई घना सम्बन्ध नही हुआ; और यदि बादशाह का राज्य उस ओर बढ़ता जाता था तो इसका कारण यह था कि वे लोग प्रायः मित्र हो जाते थे, न कि हार कर अपने को बादशाह के अधीन कर देते थे। इस लिए राजसम्बन्धी इतिहास-लेखक

चाहे जो कुछ कहे, परन्तु प्रताप बाग़ी और प्रतीपकारी ज़मीदार नही था। जो पृथ्वी उसके हस्तगत थी वह उसी की थी। परम्परागत प्रजा उसके साथ लड़ाइयों पर जाती थी। हर एक राजपूत उसे अपना मुखिया होना स्वीकार करता था। और यह न्याययुक्त विचार उन राजपूतों के हृदय से भी नही उन्मीलित हो सकता था जो अकबर के सेनापति होकर शाही झंडे के नीचे लड़ते थे।" गोगंडा पर विजय पाकर भी मानसिंह इस विजय को बहुत कुछ नही मानता था; उसने राना के राज्य को ध्वस्त नहीं किया जिसके कारण कुछ दिनों तक अकबर की भ्रुकुटी उस पर कुटिल रही। प्रताप का भाई शक्र, जो मुग़लों के पक्ष मे था, उसने भी कुसमय पर भाई के लिए सहानुभूति प्रकट की। भाइयों का स्वाभाविक प्रेम ही ऐसा होता है, इसे 'नमक हरामी' न कहना चाहिए।

अन्य युद्धों का संक्षिप्त वर्णन।

यद्यपि अकबर ने यथाशक्ति उद्योग करके अपना राज्य बहुत सा बढ़ा लिया और अपनी सहनशीलता तथा हिकमत अमली से बहुत से लोगों को अपना साथी कर लिया; तथापि राजविद्रोहियों के हृदय मे अभी तक वैर-निर्यातन की आग सुलग रही थी; और अवकाश मिलने पर भड़क उठती थी। इन बाग़ियों मे से एक मुहम्मदहकीम मिर्ज़ा था, जो हुमायूँ की किसी दूसरी स्त्री से उत्पन्न हुआ था, और इसी कारण अकबर

का वैमातृक भाई था। वह काबुल मे राज्य करता था, परन्तु कुछ हिन्दुस्तानी बागियो के भडकाने से उसके मन मे हिन्दुस्तान की बादशाहत लेने की उत्कट इच्छा हुई। इसी कारण सन् १५८७ ई० मे वह सेना लेकर पजाब की ओर बढा। इधर से अकबर ने भी यात्रा की। बादशाह की तयारी सुन कर हकीम मिर्जा फिर काबुल को लौट गया, परन्तु अकबर ने पीछा नहीं छोडा। वे सरहिन्द, कालानोर और रोतास के मार्ग से अटक नगर के पास सिन्धु नदी पार करके और उस स्थान पर एक किला बनाने की आज्ञा देकर पेशावर की ओर बढे। शाहजादा मुराद सेना लेकर काबुल को भेजा गया जहाँ उसने हकीम मिर्जा का परास्त किया। तीन दिन के पीछे अकबर भी काबुल पहुँचे, और हकीम का अपराध क्षमा करके उसे फिर स्थापित कर लाहौर के मार्ग से फतेहपुर सीकरी को लोट आये।

कुछ वर्षो के बाद हकीम मिर्जा की मृत्यु हुई और उजबक जाति वालो ने बदख्शाँ का कुछ भाग तबाह करके काबुल लेने पर कमर कसी। यह सुन कर अकबर उसी ओर बढे, परन्तु उनके रावलपिण्डी पहुँचते पहुँचते काबुल मे शान्ति फैल गई, इस लिए उन्होने सेना के तीन भाग करके एक को भगवानदास के साथ कश्मीर विजय को भेजा, दूसरे को बिलोचियो के विरुद्ध भेजा, और तीसरे भाग को स्वात मे शान्ति फैलाने के लिए भेजा। इस अन्तिम भाग की बडी दुर्दशा हुई, यूसुफजाई लोगा ने उसे नष्ट भ्रष्ट कर दिया। तब और सेना राजा बीरबल

के सेनापतित्व में भेजी गई; परन्तु इसकी भी वही दुर्गति हुई और वीरबल स्वयं मारा गया। इस हृदय-विदारक घटना को सुन कर अकबर ने बड़ा शोक किया और वीरबल के वियोग में कई दिन तक भोजन भी त्याग दिया। निदान राजा टोडरमल और मानसिंह बड़ी सेना लेकर भेजे गये; और इन सेनापतियों ने बड़ी चालाकी से ख़ैबर दर्रे के दुष्टों का शासन किया।

वहाँ से निवृत्त होकर राजा मानसिंह को लाहौर की गवर्नरी मिली; परन्तु लाहौर पहुँचते पहुँचते उसे ख़ैबर दर्रे पर फिर एक लड़ाई लड़नी पड़ी। मानसिंह ने लाहौर में अच्छा प्रबन्ध किया, परन्तु वहाँ के मुसलमानों ने अकबर से प्रार्थना की कि मुसलमान गवर्नर भेजा जावे। इस पर मानसिंह की बदली बंगाल को कर दी गई जहाँ पर एक दृढ़ शासक की आवश्यकता हो रही थी।

जो सेना कश्मीर भेजी गई थी वह भी बर्फ़ और जाड़े से घबड़ा गई और वीरबल आदि की मृत्यु का हाल सुन कर और भी स्तब्ध हो गई। इसी लिए उसके सेनापति ने कश्मीर के शासक से लिखा पढ़ी प्रारम्भ की कि यदि तुम अकबर के वशवर्त्ती हो जाओ और नाम-चार के लिए कुछ वार्षिक कर देना स्वीकार करो तो हम लोग तुम्हारा देश छोड़ दें। कश्मीर-राज ने यह बात मंज़ूर कर ली और मुग़ल सेना वापस आई।

अकबर को यह बात अच्छी न लगी, उन्होंने सैनिकों को अपने सामने जाने की भी आज्ञा न दी। सन् १५८७ ईसवी में

उन्होंने कश्मीर विजय के लिए फिर एक सेना लाहौर से भेजी। इसी समय कश्मीर-राज के विरुद्ध उसके देशवासियों ने बलवा कर दिया, जिसके कारण मुगल-सेना ने सहज ही में कश्मीर पर अपना अमल कर लिया।

दूसरे वर्ष अकबर ने काश्मीर-यात्रा की और कुछ दिन श्रीनगर में रह कर अटक होते हुए फिर काबुल पहुँचे। यहाँ उत्तम उत्तम उद्यान देखते दो ही महीने रहे होंगे कि राजा टोडरमल और राजा भगवानदास की मृत्यु की खबर मिली। लाहौर लौटने पर सन् १५९० ई० में खबर मिली कि गुजरात के भूतपूर्व पठान शासक ने फिर बलवा किया, परन्तु गवर्नर ने उसे शांत करके काठियावार और कच्छ मुगल राज्य में मिला लिया। हताश होकर पठान बागी ने आत्मघात कर लिया।

अकबर ने कुछ कठिनता से दो वर्ष में सिन्ध देश में शान्ति फैलाई, परन्तु उधर कश्मीर में फिर बलवा हो गया, इसी लिए एक बलवती सेना उधर रवाना हुई जिसने प्रवेश के दर्रे पर बड़ी वीरता से कश्मीरियों को पछाड़ा। कश्मीर के सैनिक इस बलवे के अनुकूल नहीं थे, और हार जाने से और भी उत्तेजित हो गये, इसलिए उन्होंने बागी शासक का सिर काट कर अकबर के पास भेज दिया। अकबर ने स्वयं जाकर फिर शान्ति फैलाई और देश का प्रबन्ध किया।

इसी बीच में राजा मानसिंह ने बड़े उद्योग से उड़ीसा का सूबा जीत कर मुगल राज्य में मिला दिया, और १२०

हाथी पकड़वा कर भेंट की रीति से बादशाह के पास लाहौर भेज दिये।

दक्षिण-विजय, सलीम का राज-विद्रोह, अकबर के सहायकों की मृत्यु, अन्तिम दिन, देह-त्याग।

अब अकबर का राज्य सारे उत्तरीय भारत में फैल गया था, बड़े बड़े बाग़ियों का मान मर्दित हो गया था; और बादशाह की धाक लोगों के हृदय में बैठने लगी थी। परन्तु नर्मदा नदी से दक्षिण का भाग अभी तक मुग़ल-राज्य में सम्मिलित न हुआ था। वह देश आपस की लड़ाइयों से उजाड़ हो रहा था और प्रजा अत्यन्त क्लेश में थी। इस लिए अकबर ने सोचा कि वह देश भी महान् मुग़ल-राज्य में मिला लिया जावे तो सम्पूर्ण भारत का निष्कण्टक एकछत्र आधिपत्य दिल्ली के अधिकार में हो जावे और प्रजागण पहले की बुराइयों से मुक्त होकर सुख से रहने लगें।

उस समय दक्षिण की जो दशा थी उसका संक्षिप्त उल्लेख आवश्यक मालूम होता है। उस देश में पहले हिन्दुओं का राज्य था। तीन सौ वर्ष पहले अलाउद्दीन ख़िलजी ने वहाँ लूट मार की थी; ग़यासुद्दीन तुग़लक़ ने भी चढ़ाई की थी। परन्तु इन चढ़ाइयों से कोई स्थायी प्रभाव न पड़ता था; कुछ

दिन के लिए दक्षिणी देश दिल्ली के राज्य में मिला लिये जाते थे, परन्तु अवसर पाकर वे फिर स्वतन्त्र हो जाते थे। उधर अरब के लुटेरे भी समुद्र द्वारा आकर अपना आधिपत्य बढ़ाते जाते थे। इस देश पर लोगों की लोभमयी दृष्टि इस कारण अधिक पड़ती थी कि गोलकुण्डा की खानों से हीरा निकलता था, मनार की खाड़ी में मोती पैदा होते थे और चन्दन तथा मसालों के बड़े बड़े जंगल थे।

एक समय में दक्षिणियों ने दिल्ली के राज्य से स्वतन्त्र होकर इस्माइलखाँ को अपना बादशाह बनाया; परन्तु इस्माइल ने राज्य हसन को दे दिया। यह हसन दिल्ली का निवासी था और गंगा नामक ज्योतिषी की सेवा में रह चुका था। अपने पुराने स्वामी के आदर से उसने अपना नाम 'अलाउद्दीन हसन शाह गंगा बहमनी' रक्खा और बहमनी राज्य स्थापित किया जो १७१ वर्ष तक रहा। इस राज्य के टूटने से पांच छोटे छोटे राज्य बन गये जिनके नाम थे बीजापुर, अहमदनगर, गोलकुण्डा, बिदर और बरार। उसी समय विजयनगर में राम राजा का राज्य था, जो कि अपनी नीति और चाल से 'जिमि दशनन महँ जीभ विचारी' की भांति अपनी रक्षा करता था। सन् १५६४ ई० में कई मुसलमान शासकों ने मिल कर टालीकोटा की लड़ाई में उसे परास्त करके वध कर डाला और राज्य छीन लिया। 'जहाँ कुमति तहँ विपति निदाना'; हिन्दू राजा के राज्य के लिए मुसलमानों ने आपस ही में फूट कर दी; यहाँ तक

कि एक दूसरे के प्रबल शत्रु हो गये और देश की दुर्दशा करने लगे।

दक्षिण ही मे अहमदनगर और गुजरात के बीच एक छोटा सा राज्य ख़ानदेश था; वहाँ का शासक अली राजा प्रायः अकबर का वशवर्त्ती रहता था; परन्तु उसका उत्तराधिकारी बड़ा विषयी और निर्बल निकला। बहुत कुछ उद्योग करने पर भी उसने अपनी अव्यवस्थितता न छोड़ी; इस लिए महती सेना द्वारा उसकी राजधानी असीरगढ़ ध्वस्त की गई और राज्य छीन लिया गया। ख़ानदेश को दक्षिण का फाटक समझना चाहिए, इसी लिए उसके विजय से दक्षिण के अन्य देशों के विजय मे बड़ी सहायता मिलने की सम्भावना थी। चूँकि इस देश पर अकबर के पुत्र दानियाल के सेनापतित्व मे आक्रमण हुआ था, इस लिए उसका नाम ख़ानदेश के स्थान पर 'दानदेश' रक्खा गया।

बहमनी रियासतों के लेने मे कई वर्षो तक बड़ी बड़ी लड़ाइयाँ हुई, जिनमें अहमदनगर का आक्रमण बहुत विख्यात है। पहली वार चाँदबीबी या चाँद सुल्तान नामक एक स्त्री ने इसे ऐसी वीरता से बचाया कि मुग़ल सेना के दाँत खट्टे हो गये। यद्यपि अकबर के पुत्र शाहज़ादा मुराद ने बड़ा उपाय किया, और क़िले की दीवार तोड़ भी दी, परन्तु उस पर अमल न हो सका और अन्त मे सन्धि ही करनी पड़ी।

इन लड़ाइयों के प्रधान प्रधान सेनापति ये थे--शाहज़ादा मुराद,

ख़ानख़ाना अब्दुल अज़ीज़ (माहम अनगा का पुत्र) और अब्दुर्रहीम (बैराम ख़ाँ का पुत्र) । इन सेनापतियों में भी आपस में अनवन थी, यहाँ तक कि एक दूसरे के विरुद्ध ही आचरण करते थे । यह दशा देख कर अकबर ने अबुल फ़ज़्ल को भेजा कि जाकर मेल करादे, और शाहज़ादा मुराद को वापस कर दे । परन्तु जब अबुल फ़ज़्ल दक्षिण पहुँचा तो उसी दिन मुराद की मृत्यु हो चुकी थी । आगे बढ़ कर अबुल फ़ज़्ल ने कई स्थानों पर अमल कर लिया ।

इस समय अकबर लाहौर में थे, जहाँ गत चौदह वर्ष से शाही दरबार रहता था, परन्तु दक्षिण की भयानक ख़बरें सुन सुन कर उन्हें जाना पड़ा । वहाँ अहमदनगर और असीरगढ़ को अपने वश में करके और शाहज़ादा दानियाल को ख़ान्देश और बरार का गवर्नर बना कर वे सन् १६०१ ई० में आगरा लौटे और दक्षिण विजय पूर्ण करने के लिए अबुलफ़ज़्ल को वहीं छोड़ आए ।

बादशाह के दक्षिण से शीघ्र लौटने का कारण यह हुआ कि शाहज़ादा सलीम ने बड़ा उत्पात मचा रक्खा था । मुराद और दानियाल की मद्यपान-जनित अकाल मृत्यु से अकबर को खेद था; सलीम ही इकलौता बेटा रह गया था; और बादशाह ने पहले ही उसे युवराज की पदवी देकर इलाहाबाद की जागीर दी थी । परन्तु मद्यपान का व्यसन उसमें भी उतना ही था जितना उसके दो मृतक भाइयों में था; इसके अलावा वह पिता की

आज्ञा को बहुत कुछ नहीं समझता था और इस ताक में था कि अवसर मिले तो स्वतन्त्र हो जाऊँ।

अकबर को यह सब बात मालूम थी; इसी लिए जब वे दक्षिण की लड़ाइयों को चले थे तो सलीम को बुला कर अजमेर जाने और मेवाड़ के राना को परास्त करने के लिए आज्ञा दी थी। उसके साथ राजा मानसिंह को कर दिया था, क्योंकि मानसिंह के कुटुम्ब की किसी कन्या से सलीम का विवाह हो गया था, जिससे वह मानसिंह को बहुत मानता था। अभी यह लोग मार्ग ही में थे कि बंगाल में कुछ झगड़ा उठा और मानसिंह उसके रोकने के लिए चला गया। सलीम अकेला रह गया, और लौट कर आगरे पहुँचा परन्तु वहाँ पर दुर्गाध्यक्ष ने क़िले के फाटक बन्द करके लड़ाई के लिए सेना सज्जित कर दी। वहाँ से निराश होकर सलीम इलाहाबाद पहुँचा और स्वतन्त्र बादशाह की पदवी धारण कर ली।

अकबर ने यह हाल सुन कर अपने दुष्ट पुत्र को शान्तिमय और उपदेशमय चिट्ठी लिखी कि सम्पूर्ण विरोध त्याग कर के पिता की शरण में आगरे आवे। सलीम ने इस पत्र का यथोचित उत्तर तो दे दिया; परन्तु क्रूरता न छोड़ी। फिर वह एक बड़ी सेना लेकर अपने पिता से मिलने चला, परन्तु अकबर ने उसे मार्ग ही में रोक दिया और लिखा कि यदि हमसे मिलना चाहते हो तो सिवा नौकरों चाकरों के कोई सेना साथ में मत

लाओ; और यदि यह अस्वीकार हो तो इलाहाबाद लौट जाओ। इस पर सलीम लौट गया।

दक्षिण मे विजय सम्पूर्ण करके अबुलफ़ज़्ल की यात्रा घर की ओर हुई। मार्ग मे ओरछा के राजा ने धोखा देकर उसे वध कर डाला। इस मृत्यु से अकवर को बड़ा शोक हुआ, उन्होंने सेना भेजी कि दुष्ट अपराधी को पकड़े; परन्तु वह जंगलों मे छिपा रहा, और कुछ ही दिनों मे अकवर की मृत्यु के बाद फिर प्रकट हुआ। अकवर के पुत्र और उत्तराधिकारी जहाँगीरशाह (सलीम) ने उसका वड़ा आदर किया।

आदर क्यो न करता! अबुलफ़ज़्ल के वध के लिए जहाँगीर ही ने आज्ञा दी थी। कारण यह था कि अकबर अबुलफ़ज़्ल का बहुत आदर करते थे और सब नीतियों मे उसी से मन्त्र लेते थे। मन्त्री का यह अलौकिक मान जहाँगीर से न सहा जाता था. उसे आशा थी कि इस नृशंस उपाय से मन्त्री के दूर कर देने पर मेरा मान बढ़ जावेगा। परन्तु प्रत्यक्ष कारण और ही दिखलाया गया। सलीम ने अपनी जीवनी मे यह लिखा कि चूँकि अबुलफ़ज़्ल इसलाम धर्म का पाबन्द नही था, और उसी की शिक्षा से अकबर का आचरण मुसलमानी धर्म के विरुद्ध हो गया था, इसलिए ऐसे काफ़िर पुरुष को वध दण्ड ही उचित है। जो कुछ हो, अकबर को यह नहीं ज्ञात हुआ कि उन के परम-मित्र के वध का कारण सलीम था।

कुछ दिन पीछे सलीम की आँखें खुलीं; उसने अपने पिता

से शरण माँगी, जिस पर अकबर ने फिर उसे अजमेर भेज दिया। यहाँ पर सलीम के पास अच्छी सेना थी, और यदि वह चाहता तो मेवाड़ के राजा को परास्त करता। परन्तु उसे मद्यपान और विषयासक्ति से अवकाश नहीं मिलता था। उसका अजमेर में रहना निष्फल देख कर अकबर ने उसे फिर इलाहाबाद भेज दिया।

कुछ दिन पीछे अकबर ने स्वयं इलाहाबाद की यात्रा की कि जिससे घबड़ा कर सलीम सुमार्ग पर आ जावे। परन्तु वे केवल दो मंज़िल जाने पाये होंगे कि अपनी माता की बीमारी का हाल सुन कर फिर लौटना पड़ा। सलीम को मालूम हो गया कि बादशाह का विचार मेरे लिए अच्छा नहीं है, इसलिए वह कुछ आदमियों के साथ अपने पिता की शरण में आया।

पुत्रों की ओर से अकबर को सुख नहीं था। सलीम से पहले के दो पुत्र छोटेपन ही में मर गये थे; मुराद और दानियाल की मृत्यु अधिक मद्यसेवन के कारण हो गई; अकेला सलीम रह गया, जिसका आचरण अच्छा नहीं था। परन्तु बादशाह के पौत्र कई एक थे, जिन में शाहज़ादा ख़ुर्रम का अधिक मान व प्यार था।

अकबर के आधारीभूत स्तम्भ, टोडरमल, बीरबल, अबुलफ़ज़्ल आदि न रहे, प्रेमपात्र दो पुत्र मर गये, सलीम का दुराचार प्रकट हुआ, इसलिए उनके हृदय में बड़ा शोक था। परिणाम यह हुआ कि शान्ति के स्थान पर चिरचिरापन आ गया,

असीम दया ने अपना स्थान क्रोध को दे दिया और थोड़ी थोड़ी बातों में बादशाह की अप्रसन्नता प्रकट होने लगी। एक दिन नियत समय से बहुत पहले राजसभा में अकेले पहुँच कर उन्होंने देखा कि एक लघु कर्मचारी राजसिंहासन के समीप ही सर्पवत् कुण्डलाकार पड़ा सो रहा है; इस पर उनका क्रोध इतना भड़का कि उसे वध दण्ड दिला दिया।

इन्हीं उपर्युक्त कारणों से अकबर का स्वास्थ्य भी बिगड़ गया और उन्हें बुरी रीति से संग्रहणी की बीमारी हुई। प्रधान कर्मचारियों और अमीरों को निश्चय हो गया कि अब बादशाह का अन्त समय आ गया है; इसी लिए उत्तराधिकारी चुनने की आवश्यकता हुई। शाहज़ादा सलीम को उसके दुर्गुणों के कारण कोई नहीं चाहता था; बहुत से अमीर चाहते थे कि शाहजादा ख़ुसरो चुना जावे जो सलीम का जेष्ठ पुत्र था। ख़ुसरो राजपूतनी के पेट से उत्पन्न हुआ था, इसलिए राजा मानसिंह उसके पक्ष में थे। ख़ुसरो का विवाह सेना के प्रधान अध्यक्ष खानख़ाना अब्दुल अज़ीज़ की कन्या से हुआ था, इसलिए उधर से भी सहायता की पूर्ण आशा थी। इन अमीरों ने अपना प्रस्ताव पूर्ण करने के लिए आगरे का क़िला जिसमें कि अकबर बीमार पड़े थे, बाहर से घिरवा लिया ताकि सलीम की पहुँच वहाँ तक न हो। और सलीम भी ऐसी दशा देख कर आत्मरक्षा के लिए नाव द्वारा आगरे से बाहर चला गया।

अपने जीवन से निराश हो कर अकबर ने सब प्रधान

मन्त्रियों को पास बुलाया और आज्ञा दी कि शाहज़ादा सलीम ही उत्तराधिकारी बनाया जावे। यह आज्ञा सबके शिरोधार्य हुई; मानसिंह और सेनापति ने भी अपना प्रस्ताव छोड़ कर बादशाह की आज्ञा का अभिनन्दन किया और सलीम को अपनी सहायता का विश्वास दिलाया। इसके उपरान्त शाहज़ादा सलीम आकर मृत्यु-शय्या-स्थित पिता के चरणों में गिरा। अकबर ने उसे हृदय में लगा कर समझाया कि इन मन्त्रियों, सभासदों और अमीरों ने निश्छल होकर मेरी बड़ी सहायता की है, इसीलिए मेरे पीछे इनका नित्य उचित मान आदर करना और कभी इनसे बिगाड़ न करना। फिर उन्होंने इशारा किया कि सलीम की कमर में शाही तलवार बाँध दी जावे और राज्य-सम्बन्धी वस्त्र व पगड़ी बाँध दी जावे।

उन्होंने सब अमीरों के अभिमुख कहा कि यदि अपने जीवनकाल में मैंने किसी के साथ कोई अपराध किया हो तो आप उसे क्षमा करें। इतना कह कर महानुभाव अकबर ने सिर झुका लिया; और अल्प काल ही में उनके आयुर्बल की अवधि समाप्त हो गई। यह घटना १५ अक्टोबर सन् १६०५ ई० को हुई जिस समय अकबर की उमर एक दिन ऊपर ६३ वर्ष की थी।

अपने जीवन काल ही में अकबर ने आगरे से तीन कोस पर सिकन्दरा में मक़बरा या इमामबाड़ा बनवाया था, जिसके इर्द गिर्द बिहिश्त आबाद नामक रमणीय उद्यान था। इसी

मक़बरे मे उनका मृतक शरीर दूसरे दिन स्थापित किया गया। फाटक पर नक़्क़ारख़ाना था जहाँ नियत समय पर नौबत झड़ती थी, कई एक मुल्ला अकबर की रूह की शान्ति के लिए दिन रात .क़ुरान का पुण्य पाठ किया करते थे। अब भी यह स्थान विद्यमान है; और देशीय तथा अन्यदेशीय दर्शक बड़े चाव से जा कर इसे देखते हैं।

अकबर के उत्तराधिकारी सलीम अर्थात् जहाँगीर शाह ने इस्लाम की प्रशंसा मे लिखा है कि अन्तिम दिनों मे अकबर ने प्रथम के अनुचित विचार छोड़ कर इसलाम का सत्यपथ ग्रहण किया था. अर्थात् जिस प्रकार वह कट्टर मुसलमान पैदा हुए थे उसी प्रकार कट्टर मुसलमान ही होकर मरे। अस्तु, मरण समय के विचार किसी प्रकार किसी पर विदित नहीं हो सकते; हाँ, इतना अवश्य है कि अन्तिम दिनों मे अकबर मे पहले का सा शारीरिक अथवा मानसिक बल नहीं रह गया था; और जो चिन्ताएँ उस समय थीं सब राजनैतिक थीं; धार्मिक चिन्ताओं का समय व्यतीत हो गया था।

अध्याय ५

हिन्दू

अभी तक हम अकबर के एक गुण अर्थात् दृढ़ वीरता का हाल वर्णन करते आये हैं और इस बात के दिखलाने का उद्योग किया है कि किस प्रकार वे रियासतें मुग़ल बादशाहत में मिलाई गईं, जिनमें भिन्न भिन्न प्रकार के शासक थे। चार सौ वर्ष पहले ही मुसलमान बादशाहों ने इन देशों के मिलाने का उद्योग किया था, परन्तु किसी को पूर्ण सिद्धि न प्राप्त हुई। यदि किसी समय विजय भी मिल जाती थी तो अल्पकाल ही में जैसे का तैसा होजाता था, इन रियासतों के पूर्व शासक या गवर्नर फिर स्वतन्त्र हो जाते थे और दिल्ली के बादशाह से अपना वशवर्तित्त्व छोड़ देते थे। परन्तु अकबर ने जितना काम किया सब दृढ़ता से किया। यद्यपि इन कामों में बड़ी बड़ी कठिनाइयाँ आईं, तथापि उन्होंने अपना उद्योग नहीं छोड़ा।

इस सिद्धि का एक विशेष कारण था। अन्य मुसलमान बादशाह केवल अपना मतलब देखते थे कि किस प्रकार अधिक से अधिक द्रव्य घसीटा जावे। उनको इस बात का अधिक विचार नहीं था कि किस प्रकार प्रजा सुखी रहे। इसी लिए

नाना प्रकार के अयोग्य कर उस पर बाँध लिये जाते थे। जिस भारत की शान्त-प्रकृति प्रजा का यह विश्वास था 'अष्टानां लोकपालानां वपुर्धारयते नृपः' अर्थात् राजा के शरीर में इन्द्रादिक आठों लोकपालों का वास रहता है, इस लिए प्रजा को चाहिए कि उसकी भक्ति करे और उसे देवता के समान माने, उस प्रजा को चिढ़ाना कैसे अच्छा हो सकता था। जिस प्रजा का शासन दिलीप आदि राजाओं ने इस प्रकार किया था कि 'प्रजानां विनयाधानाद्रक्षणाद्भरणादपि । स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः', अर्थात् प्रजा को विद्या सिखलाने, दुःखों से बचाने और पोषण करने में पुराने राजा लोग पिता के तुल्य होते थे; उसके असली माता पिता केवल पैदा कर देते थे—उस प्रजा पर बेजा कर लगाना असह्य था। और कर भी ऐसा कि हृदय-मर्मभेदी हो। मुसलमानों के अतिरिक्त अन्य सब धर्म्मावलम्बियों से एक विशेष कर लिया जाता था जिसे 'जज़िया' कहते थे। तारीख़ फ़ीरोज़-शाही में यों वर्णन है "जब दीवान का ज़िलेदार हिन्दुओं से यह कर माँगे तो उन्हें अत्यन्त दीनता तथा अधीन भाव से दे देना चाहिए। और अगर ज़िलेदार उनके मुँह में थूकना चाहे तो उन्हें बिना शोच संकोच, बिना अपवित्रता के विचार के, अपना मुँह खोल देना चाहिए। ऐसे अपमान और थूकने का उद्देश यह था कि काफ़िर रैयत की अधीनता प्रकट हो जावे और मुसलमानी मत का प्रकाश फैले, क्योंकि यही एक सच्चा धर्म है और झूठे धर्मों का अपमान ही ठीक है।"

एक प्रकार का कड़ा कर तीर्थ स्थानों पर लगता था। न तो और देशों और जातियों में इतने तीर्थस्थान हैं जितने हिन्दुओं में हैं, और न तीर्थयात्रा का इतना चाव है। हिन्दू-धर्म का एक बड़ा भाग तीर्थयात्रा है, कम से कम उस समय तो था। और हर एक हिन्दू जब तक अच्छे अच्छे तीर्थों का दर्शन व परिभ्रमण न कर ले तब तक वह अपना धर्म पूरा नहीं मानता। यों तो देश के हर एक भाग में बड़े बड़े तीर्थ हैं जहाँ लाखों यात्री जाते हैं, परन्तु चारों धाम, (जगन्नाथपुरी, रामेश्वर, बदरीनाथ, द्वारकानाथ); काशी, प्रयाग, मथुरा, वैद्यनाथ, कांची, अयोध्या आदि सबके शिरोमणि हैं, हर वर्ष इतने यात्री जाते हैं कि जिनकी गणना नहीं हो सकती। एक तो उस समय रेल आदि सवारियों का प्रबन्ध नहीं था, सड़कें नहीं थीं। मार्ग व्याघ्र, सिंह आदि जन्तुओं से आकीर्ण थे, लुटेरों के समूह के समूह स्थान स्थान पर लगते थे, दूसरे यदि कोई इन सब दु:खों के झेलने का साहस भी करे तो राजपुरुष कर माँगते थे। माँगते क्या थे, ज़ोराज़ोरी ले लेते थे, नहीं मुँह में थूकने के लिए तैयार हो जाते थे। इससे मुसलमान बादशाहों को दोहरा लाभ होता था, या तो करोड़ों रूपए का कर पा कर शाही ख़ज़ाना भरते थे, या मुसलमानों की संख्या बढ़ा कर 'अपना कर्त्तव्य पूर्ण करते थे'।

इसी प्रकार के कोई पचास से ऊपर कर थे जिनसे प्रजा चूर हुई जाती थी। फिर यह भी नहीं कि इतना कर ले कर

भी उनकी रक्षा अच्छे प्रकार हो; अगर कुछ झगड़ा हुआ तो न्याय क़ुरान के अनुसार होता था। चाहे किसी को भला लगे या बुरा लगे, चाहे किसी का गला कटे, क़ुरान का न्याय सर्वथा मान्य था। और भला क्यों लगेगा? यदि 'आसमानी किताब' का धर्म-तत्त्व यह है कि मुसलमानों के अतिरिक्त और सब काफ़िर (नास्तिक) हैं और उनका मारना उच्च कोटि का धर्म है तो ऐसी धर्मपुस्तक का न्याय हिन्दुओं को कब प्रिय होगा?

कोई मुसलमान सर्दार या राजा बढ़ा और उसका पहला काम यह हुआ कि चल कर हिन्दुओं की देवमूर्तियाँ तोड़ो। एक बार नहीं, बीसों बार इस प्रकार के आक्रमण हिन्दू देवमूर्तियों पर हुए और बेचारे देवपूजक मारे गये। कहा जा सकता है कि मुसलमान बादशाहो को इस्लामी राज्य फैलाने से अधिक इसलामी धर्म फैलाने की इच्छा रही: परन्तु इतने बड़े हिन्दू देश मे यह बात असंभवित थी। दूसरा मत तो तभी ग्रहण किया जाता है जब अपने मत मे कोई कमी हो, और वह कमी केवल दूसरे ही मत से पूरी हो सकती हो। हिन्दू-धर्म का विस्तार किसी से छिपा नही, अद्वैतवादी वेदान्तियों से लेकर द्वैतवादा मूर्तिपूजकों तक, और पिशाचियों तक सभी इस धर्म मे पाये जाते हैं। हिन्दुओं के लिए 'अनादि' और 'सनातन' धर्म ही सब कुछ था, उन्हे अन्यमतावलम्बन मे सब बाधा ही बाधा दिखाई देती थी।

परिणाम यह हुआ कि अल्प संख्या में हिन्दू मुसलमान हो गये, या कर डाले गये; परन्तु इससे उनकी जन-संख्या पर भारी प्रभाव न पड़ा। सहस्र उद्योगों पर भी मुसलमान बादशाहों को चिरस्थायी सिद्धि न मिली और न उनके राज्य की जड़ हिन्दुस्तान में गड़ सकी। परन्तु अकबर ने अपनी सूक्ष्म दृष्टि से सब सच्चा सच्चा हाल जान लिया। उनको मालूम था कि हुमायूँ को मुसलमान शत्रुओं के कारण हिन्दुस्तान से भागना पड़ा था; और उस दशा में भी अमरकोट के राना ने उसे उबारा था। उन्हें यह भी मालूम था कि जितने बलवे उन्होंने देखे थे सबके मुखिया मुसलमान ही थे, हिन्दुओं ने शान्ति कभी नहीं छोड़ी। जिन हिन्दू राजाओं या प्रजाओं को एक बार दया का भाव दिखा दिया गया वे बिन दामों के चाकर हो गये और जीवन पर्यन्त अर्पण करने को उद्यत रहे। इसके प्रतिकूल बहुत से मुसलमान सरदारों ने जिनका अपराध क्षमा कर दिया गया था, समय पाकर बलवा खड़ा कर दिया और बादशाह के शत्रु हो गये।

बैरामख़ाँ के निःक्रमण पर जब अकबर ने स्वतन्त्र होकर राज्य काज ले लिया तो उन्हें दो बातों की चिन्ता हुई; एक तो पूर्व-प्राप्त देश में शांति और रक्षा का पूरा प्रबन्ध, दूसरे अन्य देश जीत कर राज्य-सीमा का बढ़ाना। इन दोनों बातों की पूर्त्ति के लिए अनन्य-भक्त सेवकों, मन्त्रियों और मित्रों की आवश्यकता थी। मुसलमान अमीरों और अपने कुटुम्बियों पर भी

अकबर का विश्वास नहीं था। जब उन्होंने अपने पितृव्यों के हाथ ऐसा दुःख झेल रक्खा था तो अन्य कुटुम्बियों पर विश्वास कैसे हो। अब रह गये हिन्दू; इन्हीं से सहायता मिल सकती थी। अकबर से पहले भी, हुमायूँ और बाबर ने, तथा कई एक और मुसलमान बादशाहो ने हिन्दुओं से सहायता ली थी; पर वह सहायता चिरस्थायी न थी। जब देखा कि चारों ओर से दबाव है और किसी तरह दाल नही गलती तो हिन्दुओं को मित्र बना लिया, फिर, जब काम निकल गया तो कोई लांछन लगा कर निकाल बाहर किया। अकबर की नीति ऐसी नही थी। वे अल्पकालिक मित्रता नही चाहते थे; उनकी मित्रता केवल स्वार्थवश नही थी, किन्तु उन्होने अपने हृदय के अनुकूल गुण हिन्दुओं मे पाये थे।

अकबर समान दृढ विचारवान् पुरुष के हृदय मे जो बात एक बार आ गई वह पत्थर की लकीर हो गई। उन्होंने निश्चय कर लिया कि भारतवर्ष हिन्दुओं का देश है, इसमे बिना हिन्दुओं की सहानुभूति कुछ काम नही हो सकता; न राज्य स्थिर हो सकता है न शांति रह सकती है। अकबर का यह विचार प्रकट हुआ कि योग्य योग्य हिन्दू आने लगे और सम्मान पात्र बनने लगे। कुछ का वर्णन नीचे दिया जाता है।

टोडरमल। यह खत्री था; जन्मभूमि किसी किसी के अनुसार पञ्जाब, परन्तु औरों के अनुसार अवध के सीतापुर

ज़िले में लाहरपुर नगर । लाहरपुर में अब भी टोडरमल के महल के चिह्न हैं और बहुत से लोग अपने आपको उसका वंशज बतलाते हैं । पहले यह शेरशाह के यहाँ एक साधारण लेखक था; अपनी योग्यता तथा दृढ़ता से ऐसा प्रभाव शेरशाह पर डाला कि कुछ ही दिनों में उच्चाधिकारी बन गया। शेरशाह की प्रकृति पूर्व मुसलमान बादशाहों से कुछ भिन्न थी; उसे स्वार्थ के अलावा प्रजा की भलाई का भी विचार था; उसने जोतारू ज़मीन के नापने, उसकी ठीक ठीक हैसियत जानने और उचित लगान बाँधने का 'बन्दोबस्त' किया था। टोडरमल उसी 'बन्दोबस्त' में नौकर था, और ऐसा निपुण हो गया था कि सूर घराने की बादशाहत चली जाने पर भी उसका सत्कार मुग़ल बादशाह अकबर ने किया। अकबर ने टोडरमल के वे गुण पहचान लिए थे जिनसे मुग़ल राज्य स्थायी हो गया; प्रजा को शांति मिली। प्रथम तो टोडरमल मुज़फ़्फ़रख़ाँ की मातहती में रहा, फिर अपने कार्य-विभाग का मुखिया कर दिया गया । इसने मुग़ल राज्य में ज़मीन का जो बन्दोबस्त किया वह आगे लिखा जावेगा।

टोडरमल लड़ाई में ऐसा ही शूर-वीर था जैसा राज्य के आंतरिक प्रबन्ध में कुशल था। पहले एक सहस्र सेना का अध्यक्ष किया गया, फिर बढ़ते बढ़ते इतना बढ़ा कि जिस लड़ाई में अकबर का विश्वास अन्य पर नहीं होता था, जिस लड़ाई के हार जाने से मुग़ल राज्य के रहने या न रहने की चिन्ता

होती थी, उस लड़ाई का सेनापतित्व टोटरमल को मिलता था। कोटि कोटि कठिनाइया भी टोडरमल की दृढ़ता को नहीं तोड़ सकती थी; और वह वीर पुरुष जो काम उठाता था वह पूरा ही करके छोड़ता था। बंगाल आदि की चढ़ाइयों मे टोडर-मल ने अच्छा काम किया।

इस योग्यता का फल भी अच्छा हुआ। टोटरमल को राजा की पदवी मिली। कुछ दिनों मे दीवान का उच्चतम पद मिला: परन्तु उसने किसी राजनैतिक विचार से 'दीवान' का नाम स्वीकार न किया: यथार्थ मे काम दीवान ही का करता था। कदाचित् मुसलमान भाइयों के चिढ़ जाने के भय से उसने ऐसा किया हो। अकबर ने टोडरमल का इतना मान किया कि उसके साथ अलम (भंडा) और नक़ारा (डंका) चलने लगा। इतना भारी आदर बादशाह के वंशजों के अलावा बाहर वालों को बहुत कम दिया जाता था। इसकी मृत्यु १५८९ ई० मे हुई। इसके समान ईमानदार और अकबर का सच्चा विश्वास-पात्र, कोई न था।

वीरबल—इसका असली नाम महेशदास था। यह कालपी निवासी निर्धन ब्राह्मण था। गान-विद्या मे अत्यन्त निपुण, कविता करने मे समर्थ और हास्य-रस मे अद्वितीय था। हमारे देश का कोई भी पुरुष, स्त्री, बच्चा, बूढ़ा ऐसा न होगा जो वीरबल का नाम न जानता हो; और वह भी केवल हास्य

के लिए। हज़ारों छोटी बड़ी कहानियाँ अकबर व बीरबल के हास्य पर सुनी जाती हैं; और यद्यपि प्रायः सभी कपोल-कल्पित हैं, तथापि वीरबल के सम्मान और उस पर अकबर की कृपा की पक्की सूचना देती हैं।

राज-सिंहासन पर बैठे अकबर को थोड़े ही दिन हुए थे जब महेशदास उनके दरबार में गया। इसकी कविता और चतुरता आदि देख कर बादशाह ने हार्दिक स्वागत किया। मित्र भाव दिन दिन बढ़ता ही गया, यहाँ तक कि महेशदास बादशाह का विश्वस्त मित्र बन गया। कुछ दिन में अकबर ने उसे एक अच्छी जागीर देकर राजा वीरबल नाम रक्खा और 'कविराय' की पदवी दी।

वीरबल के विचार बिलकुल स्वच्छन्द थे; उसे जाति पाँति का झगड़ा भला नहीं लगता था; वह हिन्दुओं की बहुत सी धर्मसम्बन्धी बातों का विरोधी भी था। जब अकबर ने एक नया धर्म-मत, दीनइलाही, चलाया तो वीरबल ने हर्षपूर्वक उसकी दीक्षा ग्रहण करके बादशाह को अपना धर्मगुरु बनाया। इस मत में और कोई विख्यात हिन्दू नहीं शामिल था। इसका विस्तृत वर्णन आगे लिखा जावेगा। इतिहास जानने वालों का निश्चय है कि वीरबल ने अकबर के धार्मिक विचारों पर बड़ा प्रभाव डाला, अर्थात् उनका मानसिक झुकाव हिन्दू धर्म की ओर वीरबल ही के कारण हुआ।

दुनिया की चालाकी तो अवश्य वीरबल में कूट कूट कर भरी थी और राजनैतिक योग्यता में भी कोई कसर नहीं थी, परन्तु युद्ध-सम्बन्धी बातों से अनभिज्ञता थी। और युद्ध का ज्ञान कैसे होता ? सारा जीवन तो पढ़ने-लिखने, गाने-बजाने और दरबारदारी में गया था। तथापि युद्ध-सम्बन्धी साहस की कमी न थी और स्वामी के लिए जीव दे देने में कोई सङ्कोच न था। एक बड़ी लड़ाई में चलते समय अकबर ने असाधारण आदर दिखलाया जिस पर वीरबल ने उत्तर दिया कि मुग़ल सम्राट् को विजय मिले, परन्तु मैं इस युद्ध से लौट कर न आऊँ, क्योंकि इससे अधिक सम्मान पाना मनुष्य के लिए असंभाव्य है। वीरबल का अभिलाप पूर्ण हुआ, वह लड़ाई से लौट कर फिर अपने स्वामी के पास नहीं पहुँचा। दोनों की मित्रता केवल मृत्यु ही ने तोड़ी।

तानसेन—ऊपर के वर्णन से प्रकट है कि वीरबल के आदर का प्रधान कारण गान-विद्या थी। बड़ी बड़ी राज्य-सम्बन्धी चिन्ताओं पर भी अकबर 'साहित्य-संगीत-कला-विहीन' नहीं थे। उनके दरबार में प्रशंसा-योग्य पुरुष को अवश्य प्रशंसा मिलती थी। तानसेन गायक, जो राजपूत था, और गान-वाद्य में अपनी तुलना नहीं रखता था, दरबार में बुला कर बड़े सम्मान से रक्खा गया। इसके हिन्दी-गीत सुन कर अकबर बहुत प्रसन्न होते थे। अब भी गायक लोग इसके बनाये

हुए अथवा इसके नाम से सम्बन्ध रखने वाले गीत गाते हैं और इसे अपना प्रातःस्मरणीय आचार्य मानते हैं।

पुरुषोत्तम और देवी—यों तो बादशाह के सम्मान से अनेक विद्वान् दरबार में जाते थे, परन्तु पुरुषोत्तम और देवी नामक दो ब्राह्मणों का विशेष आदर था। रात्रि के समय जब अकबर महल के कोठे पर सोते थे उस समय देवी एक चारपाई पर नीचे रहता था, जिसमे चारों ओर डोरियाँ बँधी रहती थीं। आज्ञा पाते ही यह डोरियाँ ऊपर खींची जाती थीं; और देवी पण्डित मय चारपाई क्रमशः ऊपर चलता था। छज्जा के पास चारपाई आ जाने पर डोरियाँ बाँध दी जाती थीं, और देवी त्रिशंकु राजा की तरह अन्तरिक्ष में लटकने लगता था। अकबर के समीप महल में बेगमों के होने के कारण पण्डित का प्रवेश वहाँ नहीं हो सकता था; इसीलिए भूलोक और स्वर्गलोक के बीच में उसे स्थान दिया जाता था। इसी दोलाकार चारपाई पर से वह विद्वान् ब्राह्मण बादशाह को हिन्दूधर्म का तत्त्व सुनाता था। वेद, वेदान्त, उपनिषत्, स्मृति, पुराण आदि की उत्तम उत्तम बातों पर वार्त्तालाप होता था। इस शिक्षा का प्रभाव भी अच्छा पड़ा, और बादशाह को पुनर्जन्म पर विश्वास हो गया। यह भी दीन इलाही के बनने का एक कारण था।

राजपूत—हेमू पर विजय पाने और दिल्ली पर अधिकार करने के बाद शाही सेना दिल्ली के समीप पड़ाव पर थी।

चारों ओर से कलकल शब्द होता था। हर्ष के कारण सैनिक स्वच्छन्द विचरते थे। कोई कोई तम्बुओं की डोरियों में अटक कर गिर भी पड़ता था। एक भाग में बहुत से ओहदेदार और अमीर एकत्र थे। एक युवा पुरुष मस्त हाथी के मस्तक पर बैठा हुआ, कभी मीठे शब्दों से, कभी अंकुश से, उसे अपने वश में कर रहा था। हाथी भी अपनी स्वतन्त्रता के लिए ज़ोर मारता था, परन्तु दृढ़ शासक ने उसे अपने अधीन कर छोड़ा। इसी बीच में अम्बर का राजा विहारीमल, मय अपने पुत्र भगवानदास और पौत्र मानसिंह के बादशाह से मिलने के लिए आया और युवा पुरुष का वीर चरित्र देखता रहा। इस क्रिया से निवृत्त होकर जब वह वीर पुरुष हाथी पर से उतरा तो विहारीमल ने उसके साहस की बड़ी प्रशंसा की; क्योंकि राजपूतों को जैसा हर्ष वीर कर्म देखने से होता है वैसा अन्य किसी बात से नहीं होता। राजा की बात काट कर उस युवा पुरुष ने उसे तम्बू की ओर चलने का सङ्केत दिया, जहाँ पहुँच कर राजा ने पहचाना कि वह साहसी युवक अकबर के अतिरिक्त कोई नहीं था।

राजा विहारीमल ने देख लिया था कि मुग़ल बादशाह के विरुद्ध होकर उसकी राजधानी ही के समीप अम्बर के समान छोटी रियासत में स्वतन्त्र राज्य करना असंभवित था। इसी लिए राजपूत प्रथा के प्रतिकूल भी उसने अकबर को आत्म-समर्पण कर दिया। बादशाह ने भी राजा का अच्छा सत्कार किया और उसे हर्षपूर्वक अपने राज्य पर भेज दिया।

कुछ दिन पीछे किसी मुसलमान जागीरदार ने राजा बिहारीमल को बहुत दबाया, जिससे राजा ने अकबर से शरण माँगी। उसी समय बादशाह अजमेर के पीर के यहां जा रहे थे; उन्होंने संगानीर स्थान पर राजा और उसके सब कुटुम्ब को बुलाया। यहां पर राजा का ऐसा सम्मान किया गया और और सहायता दी गई कि उसने अपनी पुत्री से अकबर का विवाह-सम्बन्ध स्वीकार कर लिया।

यह विवाह भी अनोखा था। राजा ने देखा इस समय मुगलों का भाग्योदय है, उनसे विरुद्ध रहना लाभदायक नहीं; और यद्यपि विजातीय पुरुष को कन्या देना धर्म और परम्परा दोनों से विपरीत है, तथापि यदि हर्षपूर्वक नहीं देते तो हठ-पूर्वक ले ली जावेगी, जैसा कि पूर्व के कई एक मुसलमान बादशाहों ने किया है। मेरे पास सेना-बल भी इतना नहीं कि मुगल बादशाह से युद्ध करूँ; इससे पहले ही मुसलमान जागीर-दार मुझे दबा रहे हैं। विवाह कर देने से नया सम्बन्ध हो जावेगा और बादशाह की सहायता सदा मिलती रहेगी। उधर अकबर ने सोचा कि राजपूतों पर युद्ध द्वारा विजय पाना असं-भवित नहीं तो कठिनतम अवश्य है। जो लोग युद्ध हार कर भी साहस नहीं हारते और जान पर खेल खेल कर लड़ते हैं, उन राजपूत वीरों से युद्ध करना अपनी ही सेना और द्रव्य का अपव्यय करना है। अलावा इसके पूर्व मुसलमान बादशाहों ने बल द्वारा हिन्दुओं को वश में रक्खा, उनके धर्म-मार्ग में

बाधा डाल कर अपना धर्म फैलाने का उद्योग किया; इनको सदा काफ़िर कह कर दूर रक्खा। परिणाम यह हुआ कि ग़ुलाम आये, ख़िलजी आये, तुग़लक़ आये, और भी दो चार आये, और पुतलियों की तरह नाच कूद कर ठंडे पड़ गये। राज्य की पक्की जड़ किसी से न गड़ी। और गड़े कहाँ से? जिस पृथ्वी में राज्य की जड़ गाड़ना चाहते हो वह प्रजा है; और जब प्रजा में अशान्ति फैला दी और उसे अपना शत्रु माना तो जड़ क्या अन्तरिक्ष में जमे।

अकबर ने यह सब बातें अच्छी तरह से देख ली थीं। उन्होंने निश्चय कर लिया था कि उस समय तक राज्य स्थायी नहीं हो सकता जब तक हिन्दू सन्तुष्ट न हों और यह न मानने लगें कि हमारा बादशाह अन्य-धर्म्मावलम्बी हो कर भी हमसे प्रीति करता है। हमको बच्चों की तरह पालता है, हमारे हित के लिए उद्योग करता है, राज्य-संबंधी बातों में धर्म्म-संबंधी बातें नहीं घुसेड़ता, और हिन्दू मुसलमान सबको एक दृष्टि से देखता है, किसी के धर्म कर्म में विघ्न नहीं डालता। इन्हीं कारणों से अकबर ने हिन्दुओं से प्रीति द्वारा घना संबंध जोड़ना चाहा और राजपूत बिहारीमल की लड़की से विवाह संबंध स्वीकार किया। उनका विचार था कि कई अच्छे राजपूत अपने मित्र हो जावेंगे तो उनके द्वारा अन्य भी आकर मिलेंगे और उनकी प्रतिकूलता अनुकूलता में परिणत हो जावेगी। यदि कोई राजपूत वशवर्त्ती होने से इन्कार करेगा, तो हीन-बल होने के कारण उसकी एक भी न चलेगी।

निदान विवाह होगया और विवाह के साथ ही राजा को पंचहज़ारी (पाँच सहस्र सेना के नायक) की पदवी मिली। उसके राज्य में मुसलमान जागीरदारों ने जो हानि की थी वह सब पूर्ण की गई और कुछ रियासत और भी उसे दी गई। उसके पुत्र भगवानदास और पौत्र मानसिंह को दरबार में उच्च पद मिला। मानसिंह ने अपनी वीरता और राजभक्ति का परिचय कई बार दिया; चित्तौर के राना से युद्ध किया। बादशाह की आज्ञा से इसके साथ भी अलम (झंडा) नक़ारा (डंका) चलते थे।

इस विवाह के विषय में एक बात और कहनी है, और यद्यपि पाठकों को थोड़ी देर के लिए प्रकरण-गत विषय छोड़ना पड़ेगा, तथापि प्रसंग से उस बात का कहना आवश्यक लगता है। भर्तृहरिजी ने लिखा है 'एका भार्या सुन्दरी वा दरी वा' अर्थात् चाहे अच्छी हो या बुरी, स्त्री एकही रखनी चाहिए। बहुत से देशों में इस बात का पूरा पालन होता है, और जब तक एक स्त्री रहती है तब तक दूसरी का विचार नहीं किया जाता। परन्तु यह सभ्य लोगों का विचार है; असभ्य देशों में और असभ्य समय में इससे विपरीत क्रिया होती थी, थोड़ी बहुत अब भी होती है। लोग समझते थे कि जितनी ही स्त्रियाँ रक्खी जावें उतनी ही शान है। और स्त्रियाँ भी कहाँ से आवें ? शत्रु के यहाँ से। यह भी एक बहुत बड़ी शान मानी जाती थी कि हमने अपने साहस से शत्रु को परास्त करके उसकी बहन बेटी छीन ली और इस प्रकार उसे अपना साला ससुर बना लिया।

अकबर के पूर्व-पुरुष मध्य एशिया के पहाड़ी देशो के वासी थे। पहले अध्याय मे कहा जा चुका है कि मध्य एशिया मे बहुत सी छोटी छोटी रियासतें थीं जिनके मालिक एक दूसरे से लड़ा करते थे। शत्रु को परास्त करके उसके यहाँ से कोई स्वरूपवती कन्या ले आना बड़ा प्रशंसनीय काम था। धीरे धीरे यह प्रथा ऐसी प्रचलित हो गई कि एक एक पुरुष के कई कई स्त्रियाँ होने लगीं और यह रिवाज हो गया कि स्त्री के सम्बन्धियों से चाहे शत्रुता हो या मित्रता हो, विवाह के लिए वह पकड कर लाई जावे। अब भी एशिया के किसी किसी खंड मे यह रीति है।

विवाह की यह प्रणाली यूरुप तक भी पहुँच गई थी और अब भी उसका इतना प्रभाव बाक़ी है कि जब दुलहिन को लेकर दुलहा अपने घर की ओर चलता है तो दुलहिन के सम्बन्धी उस पर झूठा प्रहार करते हैं। इससे यह स्पष्ट किया जाता है कि कोई पुरुष अपनी वीरता से किसी दूसरे की कन्या को विवाहार्थ पकड़ लिये जाता है, और कन्या के सम्बन्धी इसे अपनी मान-हानि समझ कर उस वीर से युद्ध करते हैं और कन्या को छुड़ा लेने का उद्योग करते हैं।

जो कुछ हो, अपने कुल से अन्यत्र विवाह-संबन्ध सर्वथा योग्य है। अपने ही कुल की स्त्री से विवाह करना संतान को निकम्मी बनाना है। मुसलमानों की यह प्रथा अच्छी नहीं है। दूसरे कुल की स्त्री से जो सन्तति होती है उसमे दो प्रकार

के रक्तों के कारण कुछ नई बात आ जाती है। अकबर की माता फ़ारस देश की थी, इसलिए उनके रूप रेखा में और मुग़लों से कुछ विशेषता थी। उनका पुत्र जहांगीर, और पौत्र शाहजहाँ, जो राजपूतनियों के पेट से थे, रूप-रेखा में कहीं बढ़ चढ़ कर थे।

अध्याय ६

मुसलमान ।

अकबर मुसलमान के घर पैदा हुए और जीवन पर्यन्त मुसलमान रहे। परन्तु कट्टर मुसलमानों का विश्वास है कि वे कच्चे मुसलमान थे। यह बात सत्य और असत्य दोनों हो सकती है। सत्य इस कारण है कि जो बात अन्य कट्टर मुसलमानों मे पाई जानी चाहिए वह बात अकबर मे नही थी। असत्य इस कारण है कि मुसलमान, मुसल्लम ईमान, दृढ़ धर्म का पूरा प्रयोग उन्होने किया। इन्हीं बातों का कुछ विचार इस अध्याय मे किया जावेगा।

हर मनुष्य के कर्म और विशेषत: धर्म दो बातो पर निर्भर हैं—एक आंतरिक, दूसरे बाह्य। आन्तरिक बातें अपनी प्रकृति से उत्पन्न होती हैं जैसे दया, क्रूरता, सहनशीलता, द्वेष, सत्य, असत्य आदि। इनमे किसी का वश नही चलता, और मनुष्य के विचार भी इन्ही के अनुसार होते हैं। जैसे कोई दयावान् पुरुष हो, और कुछ रुष्ट हो जावे तो भी कहने सुनने से और विचार करने से दया ही का भाव बलवान् रहेगा और रोष थोड़ी देर मे दूर हो जावेगा। बाह्य बातें देश, काल और जाति

आदि के अनुसार होती हैं; इनके कारण कभी कभी आंतरिक बातें दब जाती हैं या दबा ली जाती हैं, जैसे सत्यभाषी मनुष्य को भी संकट पड़ने पर प्राण-रक्षार्थ झूठ बोलना पड़ता है।

अब देखना चाहिए कि अकबर की आन्तरिक और बाह्य दशाओं से उनके धर्म विचारों पर क्या प्रभाव पड़ा। मुग़ल-वंश में जन्म होने के कारण प्रथमतः कट्टर मुसलमानी के लक्षण स्वाभाविक हैं। अन्तिम वय में एक बार स्वयं अकबर ने किसी कठोर-हृदय मुसलमान की क्रूरता देखकर कहा था कि "मैंने भी अन्यधर्म वालों के साथ बड़े बड़े अत्याचार किये हैं, उनके धर्म का खण्डन किया है और उनको सताया है; परन्तु इन बातों में कोई तत्त्व न पाकर मैंने वह वृत्ति बन्द कर दी है और चाहता हूँ कि सबके साथ एक सा बरताव हो"।

इतिहास से पता नहीं चलता कि अकबर ने क्रूर वृत्ति कब धारण की; कदाचित् उस पुरुष पर सहनशीलता का प्रभाव डालने के लिए उन्होंने ऐसा कह दिया हो। जो कुछ हो, अकबर के हृदय में दया का भाव बचपन ही से हुआ। हेमू समान कराल शत्रु पर हाथ साफ़ करने के लिए जब बैरामखां ने उनसे कहा तो कितना दयामय उत्तर दिया कि "यह मुर्दा सांप घायल हो चुका है और अपने वश में है, इसका मारना मुर्दे के मारने के समान है"। जब दया का भाव इतना बढ़ा था तो दूसरों पर अनावश्यक कठोरता कैसे हो सकती थी।

इस धर्म और मत में बहुत सी बातें ऐसी होती हैं जो अन्य

मत वालों को क्या, उसी मत के मानने वालों को खटकती हैं। इनमें से जो विचार-रहित होते हैं वे अच्छी और बुरी सब बातों को समान प्रधानता देते हैं, जो विचारवान् होते हैं वे अच्छी बातों को प्रधान मान कर ग्रहण कर लेते हैं और अन्य पर ध्यान नहीं देते। दृढ़ और समर्थ पुरुष बुराइयों के निकाल डालने का उद्योग करते हैं। यही बात अकबर में थी। उन्हें क्या हिन्दू-धर्म, क्या मुसलमान-धर्म, जहाँ कहीं कोई बुराई निगाह आती थी उसे मेट देने का प्रयत्न होता था। अकबर ने देख लिया था कि असहनशीलता किसी धर्म का योग्य मन्तव्य नहीं। उन्हें यह बात बुरी लगती थी कि एक मतधारी मनुष्य दूसरे मतधारियों को अपनी धार्मिक क्रिया करने से रोके।

इस आंतरिक स्वभाव के अलावा बाहर कारणों की भी कमी नहीं थी। अकबर को हिन्दुस्तान में बादशाहत करनी थी जहाँ की जन-संख्या अधिकतर हिन्दू ही है; इसलिए हिन्दुओं की मान-मर्यादा पर ध्यान रखना आवश्यक था। इतिहासज्ञों को प्रायः अब भी सन्देह है कि अकबर का हिन्दुओं पर पक्षपात राजनैतिक था या वस्तुतः था। जो कुछ रहा हो, यह बात तो निश्चित है कि राजा बीरबल, राजा टोडरमल, राजपूतनी स्त्री और अन्य हिन्दू व्यक्तियों का प्रभाव अवश्य उनके चित्त पर पड़ा था।

कुछ दिनों तक तो अकबर का अधिकांश समय राज्य-काज में जाता था; बहुत से विश्वासपात्र मुसलमान सरदार बलवा

करके स्वतन्त्र हो जाते थे, इससे बादशाह की श्रद्धा उन लोगों पर से उठ गई। फिर एक ऐसा समय आया जब धर्म-सम्बन्धी विषयों पर व्याख्यान होने लगे और बड़े बड़े भेद खुले। ऐसे व्याख्यान फ़तेहपुर-सीकरी के 'इबादत ख़ाना' (वन्दनागृह) नामक स्थान पर होते थे जो अकबर ने इसी उद्देश से बनवाया था। इस सुन्दर सदन के मध्य भाग मे एक ऊँचा चबूतरा था और चारों ओर चार बैठकख़ाने थे, जिनका सम्बन्ध मध्यस्थ चबूतरे से चार मार्गों के द्वारा था। पश्चिम ओर 'सैयद' अर्थात् मुहम्मद के वंशज, दक्षिण ओर 'उलमा' (विद्वान्), उत्तर ओर शेख़, और पूर्व ओर दरबारी अफ़सर और सेनापति बैठते थे। चबूतरे के उच्च आसन पर अकबर विराजते थे और जिस ओर मुबाहसा (शास्त्रार्थ) होता था उसी ओर ध्यान देते थे। कभी कभी चबूतरा छोड़ कर बैठकख़ाने भी चले जाते थे और ध्यान-पूर्वक सब शास्त्रार्थ सुनते थे।

ऐसे शास्त्रार्थ या व्याख्यान हर बृहस्पतिवार की रात्रि को होते थे और प्रातःकाल तक जारी रहते थे। हर ओर से और हर देश से नाना-धर्मावलम्बी विद्वान् आते थे। मुसलमान विद्वानों के अलावा, हिन्दू, बौद्ध, ईसाई, आतशपरस्त (अग्नि-पूजक) आदि भी इस महती सभा मे योग देते थे, और नाना-विध धर्म-तत्त्वों का खण्डन मण्डन करते थे। इस धर्म-समिति मे मुसलमानों के कई फ़िर्क़े (भिन्न मतावलम्बी) शामिल होते थे जिनका कुछ वर्णन यहाँ पर आवश्यक है।

प्रथमतः मुसलमानों के दो भेद हैं, सुन्नी और शिया, दोनों के धर्म-विषयक मन्तव्यों में थोड़ा सा अन्तर है, इसी लिए उस समय भी वे एक दूसरे के दबाने का उद्योग किया करते थे। जब तक बैरामखाँ का भाग्योदय रहा, तब तक उसके दबाव से सब अच्छे अच्छे अधिकार शियों को मिलते थे; परन्तु उसके नाश होते ही फिर सुन्नियों ने अपना अमल जमा लिया। इनमें से जो लोग अन्य वृत्ति छोड़ कर केवल विद्याध्ययन करते थे और क़ुरान का अर्थ लोगों को समझाते थे उनकी संज्ञा 'उलमा' थी। 'उलमा' शब्द 'आलिम' का बहुवचन है जिसका अर्थ है 'विद्वान्'। यह लोग मदरसों में बालकों को पढ़ाते थे, ग़रीब व अमीर सबको अपनी धर्म-पुस्तक का अर्थ समझाते थे, धर्म-विषयक मामिलों का निर्णय करते थे और राजा-प्रजा सबके यहाँ समान सम्मान पाते थे। ईश्वर-संबन्धी वृत्ति धारण करने के कारण कोई इनकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकता था; यहाँ तक कि न्याय-संबन्धी अधिकार क़ाज़ी, मुफ़्ती, सदर, मीर अदल आदि के पद इन्हीं को मिलते थे। इन लोगों के पास बहुत सी जागीरें भी थीं जिनसे हज़ारों रुपए की आमदनी होती थी, और कोई भी पूछनेवाला नहीं था कि इस द्रव्य का यथार्थ न्याययुक्त व्यय क्यों नहीं होता। बहुत से युवक जिनको अपनी उन्नति का अन्य मार्ग नहीं सूझता था, इसी ओर आकर्षित होते थे।

एक विशेष सम्प्रदाय के लोग 'महदवी' कहलाते थे; उनका

विश्वास था कि मुसलमान-धर्म-प्रवर्त्तक मुहम्मद के समय से एक सहस्र वर्ष के उपरान्त प्रलय हो जावेगी, और यह उस समय होगा जब बारहवे ख़लीफ़ा या इमाम 'महदी' का जन्म होगा। हिसाब करने से हिजरी सन् का हज़ारवाँ वर्ष ईसवी सन् १५९२ मे पड़ता था, और महदवी लोग मानते थे कि इसी समय संसार नष्ट हो जावेगा। इन लोगो के विचार इस कारण और भी पक्के हो गये कि नियत समय से कुछ साल पहले घोर अकाल पड गया और कई स्थानों पर युद्ध भी हुआ, अमरीका महाद्वीप का प्रादुर्भाव सुनाई दिया और आकाश मे धूमकेतु उदय हुआ। इस फ़िर्क़े वालों से और 'उलमा' से तीव्र विरोध था, यहाँ तक कि कितने ही 'महदवी' तलवार के अर्पण हुए, बहुत से देश से निकाल दिये गये, और बहुतो पर अन्य अन्य प्रकार के अत्याचार हुए।

एक प्रकार का मत और भी प्रचलित था जिसे 'सूफ़ी' कहते थे। सूफ़ियो का तत्त्व क़ुरान से बहुत कुछ भिन्न था और किसी न किसी रूप मे वेदान्त से मिलता था। इन लोगों के भोजन वस्त्रादि बहुत सादे होते थे। अकबर को यह मत बहुत पसन्द था। दीनइलाही के अध्याय मे इस बारे मे और लिखा जावेगा।

यदि और धर्मो पर विचार न भी किया जावे तो मुसलमानों ही के पूर्व-लिखित इतने फ़िर्क़े शास्त्रार्थ के लिए काफ़ी थे। बहस होते होते खण्डन मण्डन की कोई युक्ति नहीं मिलती

थी तो गर्मी चढ जाती थी और मूर्ख, धूर्त, काफिर (नास्तिक) आदि असभ्य शब्दो का धड़ाधड प्रयोग होने लगता था। भ्रुकुटियाँ चढ जाती थी, क्रोध से लाल लाल आँखे दमकने लगती थी, मुट्ठियाँ बँधे हुए हाथ एक दूसरे की ओर बढने लगते थे, आसन छूट जाते थे, कलकल शब्द होने लगता था, और असभ्य भाषा का प्रयोग होने लगता था। ऐसी अनुचित बाते बादशाह के समक्ष ही नहीं हुईं, किन्तु दो एक बार उन पर भी बौछाड पडी।

उसी सभा मे अबुल-फज्ल नामक अकबर का प्रधान सहायक और मित्र भी था। इस विद्वान पुरुप की योग्यता ऐसी बढी चढी थी और इसके विचार ऐसे स्वतन्त्र थे कि बादशाह इसे अपनी द्वितीय आत्मा ही मानते थे। शास्त्रार्थ के समय यह विद्वान् पुरुप 'उलमा' की युक्तियों का खण्डन इस प्रकार करता था कि जिनका मण्डन किसी से न बने इसके प्रश्नो का उत्तर देने वाला कोई भी न ठहरता था।

उलमा के लिए इन बेढंगी बातों का बुरा प्रभाव पडा। इतने बड़े बादशाह के सामने युक्ति-रहित वचन कहना, एक दूसरे को धूर्त और नास्तिक बनाना, लडने के लिए उद्यत होना और स्वयं बादशाह पर कटाक्ष करना साधारण काम न था। अकबर का चित्त इन बातों से ऐसा उद्विग्न हो गया कि उनकी सब श्रद्धा जाती रही। परन्तु इस पर भी 'उलमा' का हठ न छूटा।

अबुलफ़ज़्ल ने सोचा कि जब तक धर्म-विषयक निर्णय का अधिकार उलमा को रहेगा तब तक उनका हठ न छूटेगा, इसी लिए उसने एक दिन यह प्रस्ताव किया कि क़ुरान के अनुसार बादशाह को अधिकार है कि वह धर्म का निर्णय भी करे। उसने ऐसी विद्वत्ता और युक्ति के साथ प्रमाण सहित उस प्रस्ताव का समर्थन किया कि किसी को विरोध करने का अवसर न रहा और यह निश्चय हुआ कि एक प्रतिज्ञापत्र लिखा जावे जिसके द्वारा सब उलमा 'मुजतहिद' या प्रधान धर्म-नायक का अधिकार अकबर को दें। निदान सितम्बर सन १५७६ ई० में एक प्रतिज्ञापत्र तैयार हुआ जिसमें उलमा के बड़े बड़े आचार्यों के दस्तख़त हुए। यह प्रतिज्ञापत्र अबुलफ़ज़्ल के पिता शेख़ मुबारक ने लिखा, उसका अर्थ यह है—

"हिन्दुस्तान देश रक्षा और शान्ति का केन्द्र हो गया है, उसकी पृथ्वी न्याय और उपकार से भर गई है, इसीलिए बहुत से लोग, विशेषतः विद्वान और धर्मोपदेशक, इसी देश को अपना योग्य निवासस्थान समझ कर आये हैं। हम लोग जो उलमा में प्रधान हैं, जिन्होंने धर्म और न्याय के नाना-विध तत्त्वों में अभ्यास किया है, जो कि बुद्धि-सम्मत और प्रमाण-सम्मत शास्त्र की आज्ञाओं को भली भांति जानते हैं, और जो कि पवित्रता और सत्य विचारों के लिए विख्यात हैं, इस समय क़ुरान और धर्म-परम्परा की निम्न लिखित बातों के गंभीर भावों पर पूर्ण विचार करते हैं—(१) "परमेश्वर, रसूल, और

उन लोगों की आज्ञा मानो जिनके हाथ मे अधिकार है"।
(२) "निश्चय करके जो पुरुष अंतिम न्याय के दिन परमेश्वर को प्रिय होगा वह धर्म-वीर इमाम है, जो कोई अमीर अर्थात् बादशाह का आज्ञाकारी है, और जो कोई उससे विरोध करता है वह मुझसे विरोध करता है"। इनके अलावा बुद्धि-सम्मत और प्रमाण-सम्मत अन्य बातों का विचार भी हमने कर लिया है और इस बात मे सहमत हैं कि परमेश्वर के सामने न्यायी बादशाह का दर्जा मुजतहिद (धर्म-निर्णायक) के दर्जे से अधिक है। इसके अलावा हम समर्थन करते हैं कि अबुलफ़तेह जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर, बादशाह ग़ाजी, जिसका राज्य परमेश्वर स्थिर रक्खे, जो कि इसलाम का बादशाह, धार्मिकों का नेता, और संसार मे परमेश्वर की छाया (प्रतिनिधि) है, वह अत्यन्त न्यायी, अत्यन्त बुद्धिमान्, और ईश्वर से अत्यन्त डरनेवाला बादशाह है। इसलिए यदि भविष्यत्काल मे कोई धर्म-विषयक झगड़ा उठे, जिसमे मुजतहिदों के विचार भिन्न हों, और बादशाह को जाति की भलाई के लिए, या किसी राजनैतिक कारण से अपनी विमल-मति के द्वारा, किसी एक राय के स्वीकार करने और उसके विषय मे योग्य आज्ञा देने की इच्छा हो तो हम लोग सहमत होकर कहते हैं कि ऐसी आज्ञा का मानना हमारे लिए और सम्पूर्ण जाति के लिए आवश्यक होगा।

" हम लोग यह भी प्रतिज्ञा करते हैं कि यदि बादशाह की ओर से किसी नवीन आज्ञा का निकलना उचित समझा जावे

तो पूर्व रीति से वह आज्ञा भी हमारी और जाति की माननीय होगी; परन्तु शर्त यह है कि वह आज्ञा क़ुरान के किसी वाक्य के अनुसार हो और उससे जाति को कोई लाभ पहुँचता हो। यदि कोई प्रजा बादशाह की ऐसी आज्ञा का उल्लंघन करेगी तो इस लोक में अपने धर्म और धन से वंचित रह कर उस लोक में नरक के योग्य होगी।

"हम लोगों ने जो कि उलमा और धर्मज्ञों के मुखिया हैं परमेश्वर के नाम से इसलाम की वृद्धि के लिए अपने सत्य विचार से यह प्रतिज्ञा-पत्र सन् ९८७ हिजरी के रजब महीने में लिखा है।"

यद्यपि बहुत से आचार्यों ने गाढ़े में पड़ कर यह प्रतिज्ञा-पत्र लिखा, तथापि इसका लिखना अपने पैर में कुल्हाड़ी मारना था। बादशाह की श्रद्धा इन लोगों पर से प्रथम ही उठ गई थी। अब अरुचि दिन दिन बढ़ने लगी और उलमा का मान घटने लगा। वास्तविक योग्य पुरुषों को छोड़ कर और सबसे जागीरें छीन ली गईं, और एक प्रहार पर दूसरा प्रहार इस प्रकार दिया गया कि धर्म-संबन्धी आचार्यों का मान मिट्टी में मिल गया।

इस घटना के कुछ दिन पहले अकबर ने घोषणा कर दी थी कि फ़तेहपुर की जामेमसजिद में मैं स्वयं 'ख़ुतबा' पढ़ूँगा। फ़ैज़ी कवि ने इस अवसर के लिए जो पद्य लिखे थे उनका हिन्दी पद्य में अनुवाद यह है—

विस्तृत राज्य ईश मोंहि दीन्हा।
प्रतिभा-कुशल वीर-भुज कीन्हा॥
न्याय सत्य पर मोंहि चलावे।
मम चित नीति विमुख नहिं आवे॥
कहाँ प्रभू और कहाँ तुच्छ नर।
ईश महन्त है—अल्लह अकबर॥

इस समय अकबर के शरीर में कदाचित् पहले का सा वल न रहा हो, और अमीरों के वलवों के कारण चित्त उद्विग्न हो गया हो, या अन्य जो कुछ कारण रहा हो, '.खुतवा' पढ़ने में उनकी घिग्घी वँध गई, और जो जिह्वा शत्रुदल के समक्ष कभी स्थिर न रहती थी वह भी लड़खड़ाने लगी, जिस हृदय में कभी क्षोभ नहीं होता था वह कम्पायमान हो गया। तीन पंक्तियों से अधिक न पढ़ी गईं और वादशाह को उच्च स्थान से उतर .खुतवा पूरा करने के लिए दूसरे आदमी को भेजना पड़ा।

'उलमा' के अधःपतन से अकबर को स्वच्छन्दता मिली; और जो वातें वे वादशाह की हैसियत में नहीं कर सकते थे उनके करने का अधिकार मिल गया। यद्यपि अकवर की धर्म-संवन्धिनी आज्ञाओं को मानने के लिए कोई विवश नहीं किया जाता था, और वस्तुतः कट्टर लोग उनके अनुसार क्रिया नहीं करते थे, तथापि वादशाह की प्रसन्नता के लिए देखादेखी काम चल जाता था। स्मरण रहे कि इस प्रकार के जितने नवीन सुधार होते थे वे किसी धर्मशास्त्र के अनुसार नहीं

होते थे, किन्तु समय के अनुकूल, सुख दुःख के विचार से और प्रायः राजनैतिक कारणों से होते थे।

बादशाहों को भी भय होता है। अकबर ने देखा कि 'उलमा' के बड़े बड़े आचार्य नवीन सुधारों को देख कर अत्यन्त अप्रसन्न होंगे और हर प्रकार का उपद्रव उत्पन्न करेंगे, इस लिए उनका हटाना आवश्यक हुआ। मृत्यु-दण्ड देना या विना अपराध देश से निकाल देना क्रूरता और अनीति का काम था, इस लिए नवीन सुधारों के द्रोही 'हज्ज' के मिष से कुछ धन दे कर मक्का मदीना भेज दिये जाने लगे।

अब सुधार का पक्का पक्का काम प्रारम्भ हुआ। अकबर ने ऐसी ऐसी बातें प्रकट कीं जो मुसलमानों के अत्यन्त प्रतिकूल और .कुरान से विरुद्ध थीं। उन बातों को सुन कर हर एक मुसलमान अवश्य यही कह देगा कि अकबर नास्तिक था, क्योंकि उसने इसलाम के मूल तत्त्वों ही का छेदन कर दिया। नोअर ने इस प्रकार की बहुत सी बातें लिखी हैं:—

मुसलमानों का धार्मिक विश्वास है कि .कुरान आसमानी किताब है, अर्थात् ईश्वर की कही हुई है; अकबर ने कहा कि वह प्राकृत पुस्तक है, और मुहम्मद प्राकृत पुरुष है, मुहम्मद के भविष्यत् वक्तृत्व में और करामतों में सन्देह है, फ़रिश्ते और जिन कोई योनि नहीं। मृत्यु के पश्चात् जीव को अन्य कोई निग्रह या अनुग्रह नहीं प्राप्त होता और न वह एक रूप से रह सके, किन्तु पुनर्जन्म से शुद्ध होता है।

मूल तत्त्वों के अलावा चलतू बातों पर भी प्रहार पड़ा। "ला इलाह इल् अल्लाह, मुहम्मदन रसूल अल्लाह" जिसका अर्थ है कि अल्लाह के अतिरिक्त अन्य ईश्वर नहीं, और मुहम्मद उस अल्लाह का पैग़म्बर है, यह मुसलमानों का चिर-प्रचलित मन्त्र है। अकबर ने इसे बदल कर और कर दिया जिसका अर्थ है कि अल्लाह के सिवा अन्य ईश्वर नहीं और अकबर उसका प्रतिनिधि है। ऐसे साहस का करना बादशाह के लिए भी ठीक नहीं था, इसलिए अकबर के नये 'कलमा' का प्रयोग केवल शाही महल ही मे होता रहा और आगे नहीं बढ़ाया गया।

जब दो मुसलमान मिलते हैं तो सलाम का यह क्रम है कि एक कहता है 'अस्सलाम अलेक' अर्थात् तुम्हारा कल्याण हो; दूसरा उत्तर देता है 'व अलेकम अस्सलाम' अर्थात् तुम्हारा भी कल्याण हो। अकबर ने इसे बदल कर दूसरी रीति चलाई। प्रथम पुरुष कहता था 'अल्लाहु अकबर' अर्थात् ईश्वर महान् है; दूसरा उत्तर देता था 'जिल्ले जलालहू' अर्थात् वह तेजोराशि है।

पुस्तक या चिट्ठी आदि के प्रारम्भ मे मुसलमान लोग 'बिस्मिल्लाह' लिखते हैं; अकबर ने उसके स्थान पर 'अल्लाहु-अकबर' नियत किया। इन सब बातों के देखने से ज्ञात होता है कि अकबर को अपने नाम का सम्बन्धी कलमा बहुत प्रिय था; क्योंकि उसका दूसरा आशय यह भी हो सकता था कि अकबर अल्लाह के समान है।

अभी तक सिक्कों में 'कलमा' लिखा जाता था; अकबर ने सन् १५७६ में उसके स्थान पर अपना नाम 'जलालुद्दीन अकबर' प्रविष्ट कर दिया, क्योंकि सिक्कों का संबंध धर्म की अपेक्षा बादशाह के नाम से अधिक है।

अकबर का मत था कि मुसलमानी नामों और विशेषत: बच्चों के नामों के आदि या अन्त में 'मुहम्मद' और 'अहमद' की योजना योग्य नहीं; इसीलिए बहुत लोगों ने अपने नामों से यह शब्द निकाल डाले या बदल दिये।

मुसलमान बादशाहों के समय में हिजरी सन् और मुहर्रम सफ़र, रबी उल अव्वल आदि महीनों का प्रयोग होता था; परन्तु इस गणना से सौर वर्ष में बड़ा अन्तर पड़ जाता था; अर्थात् जब तक सौर वर्ष ३६ होते थे तब तक हिजरी साल ३७ होते थे। इसके अलावा कोई महीना नियत समय पर नहीं पड़ता था। उदाहरण के लिए रमज़ान का महीना ले लो जिसमें रोज़े रक्खे जाते हैं; वह कभी जाड़े में पड़ता है कभी गर्मी में, कभी वर्षा में। इस दोष को देख कर अकबर ने राजसिंहासन पर बैठने के समय (१५५६ ई०) से अपना सन् चलाया और उकसा नाम सन् इलाही रक्खा। फ़रवर्दिन, आर्दीबिहिश्त, ख़ुरदाद आदि फ़ारसी महीनों का प्रयोग होने लगा, जिनकी गणना सूर्य संक्रांति के हिसाब से होती है।

इनके अतिरिक्त और भी बहुत से छोटे बड़े सुधार हुए,

जैसे ओषधि के लिए अल्प मात्रा मे मदिरा पान, शूकरां और कुत्तों को अपवित्र न मानना, गोमांस से परहेज़ करना, दाढ़ी मुड़ाना आदि, जिनका कुछ और वर्णन दीन इलाही के संबंध मे किया जावेगा। यह सब सुधार कट्टर मुसलमानों को चिढ़ाने वाले थे; और अकबर के उद्योग करने पर भी इनका बुरा प्रभाव पड़ा; क्योकि इन्ही के बहाने बहुत से 'उलमा' और अन्य कट्टर लोग बाग़ी हो गये, और राज्य मे उपद्रव करने लगे। यद्यपि अकबर ने इन बलवों को शान्त करके अपनी ही बात दृढ़ रक्खी तथापि यह विषय बड़ी चिन्ता और अधिक व्यय का था। इन सब बातों का संक्षिप्त वर्णन आगे होगा।

अकबर का यह अभिप्राय नही था कि मुसलमानो को व्यर्थ चिढ़ावे; इसके विपरीत यह आशय था कि सब लोग अपना अपना मत माने और एक दूसरे पर आक्षेप न करें। यद्यपि उन्होंने निज के तौर पर मुहम्मद के पैग़म्बर होने मे सन्देह किया था और कहा था कि मनुष्य के लिए यह असंभवित है कि आकाश पर चढ़ कर साक्षात् ईश्वर से इतनी लम्बी चौड़ी बात चीत करके इतने अल्प समय मे लौट आवे कि शय्या गर्म ही मिले, तथापि बाहरी दिखाव मे कोई निरादरसूचक बात नहीं होती थी। एक अवसर पर कोई बड़ा मुसलमान हज्ज करके मक्का से एक बहुत बड़ा पत्थर लाया था जिस पर पैग़म्बर का पद-चिह्न बना था; अकबर ने इस पत्थर का बड़ा मान किया, सवारी से उतर कर उसके सामने शिर झुकाया, और अमीरों

को आज्ञा दी कि कई एक मिल मिल कर अपने कधा पर उसे फतेहपुर सीकरी की ओर ले चले।

अकबर हनफी सम्प्रदाय के सुन्नी थ, परन्तु तीर्थ-यात्रा क विषय मे उनकी रुचि शियो से भी वढ चढ कर थी। उनका कट्टर इसलाम धर्म इसी एक वात से जाहिर होता था। उनकी धार्मिक यात्रा के दो विशेष स्थान थे, सिकरी और अजमेर। सिकरी के ख्वाजा पीर की कृपा से और उसी के स्थान पर सलीम का जन्म हुआ था, इस फकीर पर अकवर की ऐसी श्रद्धा थी कि पहले दस दस बीस बीस दिन तक वहा पडे रहते थे और कुछ दिन पीछे वही राजधानी वना ली। अजमेर के पीर मे इससे भी अधिक भक्ति थी। जितनी वडी वडी लडाइया होती थी सबके आदि या अन्त मे चिश्ती फकीर के दर्शनार्थ वादशाह अवश्य जाते थे। चित्तौरगढ पर विजय पाने के उपरान्त उन्होने पैदल ही अजमेर-यात्रा की, परन्तु वहा के फकीर ने दिव्य दृष्टि से देख लिया कि इतना बडा वादशाह वहुत कष्ट उठा कर मेरे मिलने के अर्थ आ रहा है, इसलिए उसने आज्ञा भेज दी कि सवारी पर आइए, पैदल आने की आवश्यकता नही। तब अकबर घोडे पर सवार हुए, परन्तु जब अजमेर एक मजिल रह गया तब फिर घोडा त्याग दिया और श्रद्धापूर्वक पीर के दर्शन किये। इस प्रकार की यात्राओ से अकबर को मार्ग मे देश-दशा के भली-भाँति देखने का अच्छा मौका मिलता था।

फ़ैज़ी और अबुलफ़ज़्ल।

अकबरनामा और आईने-अकबरी।

इन दोनों भाइयों ने विद्या-सम्बन्धी ऐसे बडे बडे काम किये और अकबर के धार्म्मिक, राजनैतिक और सामाजिक विचारों पर ऐसा गम्भीर प्रभाव डाला कि इनका विस्तृत वर्णन पृथक् होने के योग्य है।

यह दोनों भाई शेख़ मुबारिक के पुत्र थे जिसका कोई पूर्वज सिन्ध देश मे आकर बसा था। मुबारिक का पिता शेख़ खिज़र देश भ्रमण करता हुआ अजमेर के समीप नागौर मे बसा। उसने अपने पुत्र मुबारिक को अच्छे प्रकार विद्या पढाई. परन्तु अधिक विद्याभ्यास और स्वच्छन्द विचारों के कारण मुबारिक की श्रद्धा अपने इसलाम धर्म पर न जमती थी. उसका चित्त एक मत से दूसरे मत पर डांवाडोल रहा करता था, इसी कारण इसलाम धर्म के 'उलमा' अर्थात् विद्वान् आचार्य्य उससे विरुद्ध रहते थे।

मुबारिक ने आगरे के समीप चारबाग़ मे अपना स्थान बनाया; यहो पर सन् १५४७ ई० मे अबुल् फ़ैज़ का और १५५१ मे अबुल्फ़ज़्ल का जन्म हुआ। विद्वान् पिता ने अपने दोनों पुत्रो को ऐसी अगाध विद्या पढ़ाई कि छोटी ही अवस्था मे कोई उनका सामना नही कर सकता था। धार्म्मिक अनवस्थित-चित्तता भी पिता से निकल कर पुत्रो मे पहुँची।

मुबारिक को अपने मत का विरोधी जान कर कट्टर मुसलमानो ने बादशाह से आज्ञा ले ली कि उस राजसभा में बुला कर दण्ड दिया जावे। इस पर मुबारिक गुजरात भाग गया और वहाँ से मिर्जा अब्दुलअजीज (अकबर के धात्री-पुत्र) से सिफारिश लाया। कुछ दिन के बाद वह स्वयं अपने ज्येष्ठ पुत्र अबुल्फैज को साथ लेकर दरबार मे पहुँचा, परन्तु स्पर्धा के कारण दरबारियो ने उसका प्रवेश सफल न होने दिया।

अब अबुल्फैज की विद्वत्ता का यश चारो ओर फैल गया और सन् १५६७ ई० मे जब अकबर चित्तौर की चढाई पर थे, तब उन्होने आज्ञा दी कि यह पुरुष दरबार मे हाजिर किया जावे। परन्तु 'उलमा' ने इस आज्ञा का दूसरा ही अर्थ लगाया, उन्होने जाना कि बादशाह अप्रसन्न होकर इस कुमार्गगामी युवक को दण्ड देना चाहते हैं। इसी विचार से सकीर्णहृदय 'उलमा' ने शेख मुबारिक का घर सैनिको द्वारा घिरवा लिया, और जिस समय अबुलफैज बाहर से घर को आया, उसे पकड़वा लिया। अब कठिन-चित्त सैनिक इस सुकुमार बालक को एक घोडे पर चढा कर बड़े दुःख और निरादर के साथ दौडाते हुए बादशाह के पास ले गये। वहाँ पहुँचते ही मिर्जा अब्दुल-अजीज ने उसका स्वागत किया और बादशाह के हुजूर मे पेश किया जिन्होने बड़े सम्मान और प्रेमभाव से अबुल्फैज को लिया। इस समय से अकबर की असाधारण प्रीति उस युवा विद्वान् पर हो गई और वह दरबार मे रहने लगा।

अबुल्फ़ैज़ का तख़ल्लुस (कविता-सम्बन्धी नाम) फ़ैज़ी था; और इसी नाम से वह इतिहास में विख्यात है। वह अत्यन्त विद्वान् और प्रतिभाशाली कवि था, और सूफ़ी तत्त्वों से भरी कविता करता था। कट्टर इसलाम के तत्त्वों का विरोधी होने से अन्य मुसलमान लोग उसका बड़ा आदर नहीं करते थे, तथापि अगाध विद्या, और बादशाह के पक्षपात के कारण उसका कोई कुछ नहीं कर सकता था।

फ़ैज़ी का छोटा भाई अबुल्फ़ज़्ल भी उसी के समान विद्वान् था, परन्तु मतमतान्तरों के तत्त्व ढूँढ़ने में और वैज्ञानिक विषय की जाँच में उसको अपने ज्येष्ठ भाई से अधिक रुचि थी। पहले उसकी रुचि थी कि जन-संमर्द से पृथक् रहूँ और विद्याभ्यास में अपना जीवन व्यतीत करूँ। वह हर समय चाहता था कि तिब्बत के लामा, पुर्तगीज़ों के प्रधान पादरी, पारसियों के मुख्य पुरोहित से किस प्रकार भेंट और बातचीत हो कि उनके मन्तव्य तत्त्वों का अध्ययन करूँ और संकीर्णहृदयता को तिलाञ्जलि दूँ। अबुल्फ़ज़्ल के पास बहुत से शिष्य भी थे जो गुरु को बड़ी आदर दृष्टि से देखते थे, इसके कारण उसकी इच्छा एकान्तवास की ओर और भी झुकती थी। शाही दरबार में रहने के लिए पिता और भाई का उपदेश भी उसे अच्छा नहीं लगता था।

परन्तु समय एक सा नहीं रहता। फ़ैज़ी के अनुरोध से उसने शाही दरबार में जाना स्वीकार किया। सन् १५७४ ई०

में फ़ैज़ो ने स्वयं उसे अकबर के सामने पेश किया जिन्होंने बड़े आदर से उसका स्वागत किया । अब क्या था, सोने में सोहागा सा मिल गया; अकबर के स्वतन्त्र विचार जो इस समय तक योग्य साथी के न मिलने से गुप्त पड़े थे, धीरे धीरे प्रकट होने लगे, और अल्प काल ही में ऐसे उत्तेजित हो गये कि किसी के रोके न रुके । इसी समय में फ़तेहपुर सीकरी के 'इबादतख़ाने' में धार्म्मिक विषयों के बड़े बड़े शास्त्रार्थ होने लगे और वहाँ पर अबुल्फ़ज़्ल की प्रतिभा ऐसे पूर्ण रूप से प्रकट हुई कि सब विद्वानों के दाँत खट्टे हो गये । 'उलमा' के अध:पतन, दीन इलाही के स्थापन, और अकबर की स्वच्छन्द धार्म्मिक तथा सामाजिक क्रियाओं का एक प्रधान कारण अबुल्फ़ज़्ल को समझना चाहिए ।

यह प्रथम ही कहा जा चुका है कि 'उलमा' की ओर से जो प्रतिज्ञापत्र लिखा गया था उसके प्रधान संचालक शेख़ मुबारिक और उसके दोनों पुत्र ही थे । क्या विद्या के गाम्भीर्य्य में, क्या वाद प्रतिवाद की युक्तियों में और क्या निष्पक्ष स्वतन्त्र विचारों में, यह तीनों पुरुष हर बात में अपना पूर्ण प्रभाव रखते थे । महाभारत आदि हिन्दूधर्म की पुस्तकों का फ़ारसी अनुवाद भी अबुल्फ़ज़्ल ही के अनुरोध से और सहायता से हुआ ।

अबुल्फ़ज़्ल की विद्या दुर्गम वनों के सुगन्धित पुष्पों की तरह निष्फल नहीं जाने पाई, क्योंकि उसने अन्य फ़ारसी ग्रन्थों के अलावा दो महान् ऐतिहासिक पुस्तकें लिखीं जिनके

नाम 'अकवर-नामा' और 'आईन अकवरी' हैं। 'अकवर-नामा' मे राज्य-सम्वन्धी सम्पूर्ण वातों का सविस्तर वर्णन है। इन्ही ग्रन्थों से उस राज्य की सव वातें अच्छे प्रकार ज्ञात होती हैं और अकवर-सम्वन्धी सव इतिहास-ग्रन्थ प्रायः इन्ही दो भाण्डारों की कृपा से तैयार हुए हैं। इसमे सन्देह नही कि इन पुस्तकों मे लेखक ने कही कही वहुत वढ़ावा कर दिया है और वादशाह की प्रशंसा मे योग्यायोग्य का विचार कम कर दिया है। परन्तु ऐसे स्थल अधिक नही हैं, और जहाँ कही अनुचित प्रशंसा रूप से अधिक लिख दिया गया है, वह सव स्पष्टतया प्रकट होता है। राज्य-सम्वन्धी और इतिहास-सम्वन्धी सव वातें ठीक ही ठीक वताई गई हैं, उनमे किसी तरह का घटाव वढ़ाव नहो किया गया। अबुलफ़ज़्ल के लेखों का एक वड़ा श्लाघनीय गुण यह है कि उनमे कर्मचारियों का वर्णन उसी प्रकार सच्चा सच्चा हुआ है जैसे कि मुसलमान अमीरो का।

'आईन अकवरी' केवल इतिहास ही नही, किन्तु उसे इतिहास, राज्य-विषयक वातें और विविध विषयों का सागर समझना चाहिए। तैमूर के समय से लेकर सन् १६०२ ई० तक मुग़ल राजाओं और उनके राज्यों का वर्णन है। तव अकवर के राज्य का सविस्तर वर्णन है। रनिवास, कोष, टकसाल, सब वस्तुओं का तत्सामयिक मूल्य, युद्धविद्या, शान्तिविद्या, हाथियों, घोड़ों, ऊँटों, वैलों के पालने के नियम, सभ्य समाज तथा राज-दरवार के नियम, सुगन्धि द्रव्यो का हाल, राजसेवा के नियम,

सेना-सम्बन्धी नियम, अफ़सरों की सूची, शिक्षा-विभाग, नौका-विभाग, आखेट के नियम आदि सब बातें वर्णित हैं। बीच बीच में, उचित स्थलों पर बादशाह के कामों और वाक्यों की छोटी मोटी कहानियाँ फैली हैं। मालगुज़ारी, कर और टोडर-मल के 'बन्दोबस्त' का वर्णन बहुत प्रसिद्ध है। अन्त में भारत-वर्ष और उसकी प्रजाओं का सविस्तर वर्णन है; दीन इलाही की सब बातें संक्षेप से कही गई हैं।

अब हम अबुल्फ़ज़्ल का चाल चलन लिख कर यह अध्याय समाप्त करते हैं। यह पुरुष बड़ा ईमानदार था और ऋजु-वृत्ति से कभी विचलित नहीं होता था। दक्षिण की चढ़ाई में एक शत्रु ने बहुत से बहुमूल्य उपहार इसके पास भेजे कि बादशाह से उसकी सिफ़ारिश कर दे, परन्तु इसने उन्हें लौटा कर उत्तर दिया कि बादशाह की उदारता से मेरी तृष्णा ऐसी शान्त हो गई है कि दूसरे की सहायता की मुझे आवश्यकता नहीं। अबुल्फ़ज़्ल के हृदय में वीरता और विचारों में स्वच्छन्दता थी। वह अपना सब काम बड़े परिश्रम और क्रम से करता था, और सब के साथ शान्तिपूर्वक रहना चाहता था। मुसलमान बादशाहों का कदाचित् यही पहला मन्त्री था जिसने राज्य भर में धार्म्मिक सहिष्णुता फैलाई, अर्थात् सब को अपने अपने धर्म के अनुसार कर्म करने की स्वतन्त्रता दिलाई। इससे अधिक सच्चा और विश्वासयोग्य मन्त्री कदाचित् ही कोई हुआ हो।

अध्याय ७

ईसाई आदि अन्य मत—दीन इलाही ।

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम् ।
उदारचरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम् ॥"

अच्छा नीति का श्लोक है और अकबर की दशा पर पूरा चपक जाता है । अकबर के समान जिस पुरुष ने निश्चय कर लिया कि हर धर्म में कुछ तत्त्व और सार है और हर आदमी अपनी रुचि के अनुसार धर्म ग्रहण करने के लिए स्वच्छन्द है, उस पुरुष के लिए सभी धर्म मान्य हैं । वह हर एक मत की उत्तम उत्तम वातों को देखता है और उन्हें ग्रहण कर लेने की आकांक्षा रखता है; उसके लिए 'तअस्सुब' या धर्म-विषयक असहिष्णुता कोई वस्तु नहीं । परन्तु इसके साथ ही साथ वह हर एक वात तोल भी लेता है; वह अन्ध-परम्परा पर विश्वास नहीं करता, किन्तु बुद्धि-सम्मत और प्रमाण-सिद्ध वातों ही की अपेक्षा रखता है, चाहे वह जिस धर्म या समाज की हों ।

अकवर की ठीक यही दशा थी । उत्पत्ति से मुसलमान होकर भी उन्होंने हिन्दुओं की बहुत सी बातें ग्रहण कीं; कुछ अग्नि-पूजकों से लीं; इसलाम की बहुत सी बातें त्याग कर दीं । अब

उनकी इच्छा हुई कि ईसाई मत का भी जानना आवश्यक है। उस समय पश्चिम समुद्र के तट पर बम्बई के समीप गोवा नगर में पुर्तगीज़ अर्थात् यूरुप महाद्वीप के पुर्तगाल देश के लोग रहते थे और सौदागरी करते थे। अकबर ने उनके अध्यक्ष के नाम एक फ़र्मान भेजा कि मुझे ईसाई धर्म जानने की उत्कट इच्छा है, इस लिए कुछ योग्य पादरी भेज दीजिए। दरबार में उनका पूरा सम्मान होगा और जब उनकी इच्छा होगी तब लौट जावेंगे; उनकी रक्षा का बीड़ा मैं स्वयं उठाता हूँ।

अध्यक्ष ने यह निमन्त्रण हर्ष-पूर्वक स्वीकार करके तीन विद्वान् और योग्य धर्मदक्ष पादरी भेज दिये, जिनका अच्छा स्वागत किया गया और जिनके लिए शाही महल के समीप ही निवास-स्थान दिया गया। इबादतख़ाने में इन पादरियों के प्रभाव-युक्त व्याख्यान होते थे जिनका अर्थ एक दोभाषिया समझाता था। शास्त्रार्थ में पादरी लोग ऐसे ऐसे महत्तापूर्ण खण्डन मण्डन करते थे और ईसाई मत का ऐसा प्रतिपादन करते थे कि उलमा लोगों की जिह्वा स्तब्ध हो जाती थी। इनके बहुत से धर्म-तत्त्वों और प्रमाणों को सुन कर अकबर मुग्ध हो जाते थे और भरी सभा में उच्च प्रशंसा करते थे। अपने मत का खण्डन और दूसरे की प्रशंसा सुन कर उलमा हृदय-दग्ध हो जाते थे।

बादशाह की आज्ञा से पादरियों ने एक गिरजाघर भी बनाया, जहाँ वे अपनी धार्मिक रीति भाँति करते थे। कभी कभी अकबर अकेले गिरजाघर जाकर पादरियों के साथ ईश्वर-

विनय मे शरीक होते थे। बादशाह की ओर से यह आदर देख कर हिन्दू और मुसलमान सभी इन पादडियों का बड़ा सम्मान करते थे और इन्हे देवता के समान मानते थे।

अकबर का मुख्य आशय यह था कि इन लोगों के द्वारा यूरुप की सभ्यता और कला-कुशलता का हाल जाने और ईसाई मत के मूल सिद्धान्तो से परिचय पैदा करे। इसी लिए पादड़ियों से प्रश्न पर प्रश्न किये जाते थे; और जब तक प्रमाण-युक्त उत्तर नहीं मिलता था तब तक अकबर को चैन न आती थी।

बादशाह ने अपने मध्यम पुत्र मुराद को, जो उस समय आठ वर्ष का था, पादड़ियों के हवाले किया कि इसे पुर्तगाल की भाषा पढ़ाओ और ईसाई मत के सिद्धान्तों की शिक्षा दो। ऐसा करने पर भी पुरानी मुसलमानी बान न छुटी थी; अर्थात् पाठ के प्रारम्भ मे 'बिस्मिल्लाह' कहा जाता था; अकबर ने आज्ञा दी कि पाठ के प्रारम्भ मे 'अय नामे तू ईसा व ख्रिस्टो' पढ़ा जावे। इस बात के अतिरिक्त और भी हर प्रकार से पादड़ियों का सत्कार किया गया; शाही पुस्तकालय से बढ़िया बढ़िया ईसाई मत की पुस्तके उन्हे उपहार मे दी गईं।

परन्तु पादड़ियों का उद्देश महान् था; उनकी इच्छा थी कि बादशाह को ईसाई मत का चेला करके सम्पूर्ण भारत मे अपना धर्म फैला दे। इसके लिए उन्होंने कितने ही उपाय किये; मगर जैसे पत्थर मे जोंक नहीं लगती उसी प्रकार बादशाह के दृढ़

विचारों में परिवर्त्तन न हुआ। उन्होंने पादड़ियों को इस लिए नहीं बुलाया था कि स्वयं उनके चेले हो जावें, किन्तु उनके सिद्धान्तों के जानने के लिए ऐसा किया था। एक अवसर पर पादड़ियों ने शाही राज्य में व्याख्यान देने और लोगों को ईसाई बनाने के लिए बादशाह से आज्ञा माँगी; परन्तु उन्होंने सब बातें ईश्वराधीन बतला कर उस प्रश्न को टाल दिया। कुछ दिन पीछे पादड़ी लोग गोवा लौट गये।

इसके बाद फिर पुर्तगीज़ ईसाई लाहौर को दो बार बुलाये गये जहाँ पर उस समय बादशाह का निवास था। यहाँ पर पुर्तगीज़ विद्या की एक पाठशाला खोल दी गई जहाँ शाहज़ादे और अमीरों के पुत्र पढ़ते थे।

इस प्रकार अकबर ने ईसाइयों की बहुत सी बातें सीखीं, परन्तु अभी तक उनकी दृष्टि में कोई ऐसा धर्म न आया जिसकी सब बातें उनके मनोऽनुकूल हों, इस लिए उन्होंने एक नवीन मत चलाया जिसका नाम था 'दीने इलाही' या ईश्वरीय धर्म। इस मत के प्रधान आचार्य स्वयं अकबर थे और जो दीक्षा लेना चाहता था उसको शपथ करना पड़ता था कि गुरु की आज्ञा से तन, मन, धन, प्राण और पूर्व-धर्म सब त्याग करने को उद्यत हूँ। दीक्षा का क्रम यह था कि भावी शिष्य अपनी पगड़ी हाथ में लेकर गुरु के चरणों में मस्तक रखता था। इसका यह भाव था कि भाग्यवशात् मैं अपना अहंकार छोड़ कर शरणापन्न हूँ, मुझे इस संसार से उद्धार कीजिए। तब गुरु उसकी पीठ पर

हाथ फेर कर उसे उठाता था और अपने हाथ से उसके शिर पर पगड़ी बांध देता था। तब उसे दीक्षा का चिह्न दिया जाता था जिस पर 'अल्लाहु अकबर' आदि मन्त्र लिखे रहते थे।

दीन इलाही बड़ा विचित्र धर्म था, इसमें हिन्दू, मुसलमान, अग्निपूजक आदि अनेक मतों से कुछ कुछ बातें चुन कर रक्खी गई थीं, समय समय पर नाना प्रकार के सुधार होते थे जिनसे सामाजिक और राजनैतिक बुराइयों के दूर करने का भी अभिप्राय था। कुछ सुधार व्यर्थ-प्राय थे, परन्तु उनसे मुसलमानों को उद्वेग होता था।

'ईश्वर तेजोमय है, और संसार में जितना तेज दिखलाई देता है सब उसी का है; सूर्य और अग्नि में तेज विशेष है, इसलिए इन्हें परमेश्वर का चिह्न कहना चाहिए।' यह बात बीरबल ने अकबर को सुझाई, उन्होंने सूर्य की पूजा अपने धर्म में मिला ली। सूर्यसहस्रनाम, अर्थात् संस्कृत में सूर्यदेव के हज़ार नामों का स्तोत्र तैयार किया गया, जिसका पाठ दीन इलाही वाले जन करते थे। बादशाह स्वयं प्रातःकाल सूर्योदय के समय एक ब्राह्मण की सहायता से इन नामों का नित्य पाठ करने लगे। इसी प्रकार दोपहर, सायंकाल और अर्द्धरात्र को भी सूर्य की पूजा विहित मानी गई। अग्निपूजा का भी विशेष प्रबन्ध किया गया। वर्ष के एक नियत समय पर अर्थात् मेष की संक्रान्ति के उन्नीसवें दिन शास्त्र की विधि से सूर्यकान्त मणि के द्वारा अग्नि पैदा की जाती थी। यह अग्नि एक वर्ष तक एक पृथक् मन्दिर

मे जिसे 'अगिन खाना' कहते थे रक्खी जाती थी। अग्निगृह की रक्षा के लिए कोई भारी अमीर नियत होता था, यह काम अबुलफज्ल ने चिरकाल तक किया। यही अग्नि हवन और रसोई के काम मे लाई जाती थी। स्मरण रहे कि अकबर अपनी राजपूतनी स्त्रियो के साथ महल के भीतर हवन भी करते थे। बडे बडे अमीर भी अपने घरो म पृथक् अग्निशालाएं रखते थे। विधिवत् अग्निपूजा सिखलाने के लिए फारस देश से एक अग्नि-पूजक पुरोहित भी बुला कर दरबार मे रक्खा गया।

अब नवीन सुधारो का वृत्तान्त सुनिए। पहले गोमास का निषेध किया गया, कुछ दिन पीछे महिष, भेड, घोडा और ऊट के मास का भी निषेध हो गया। फिर आज्ञा निकली कि जहाँ तक हो सके मास सेवन करना ही न चाहिए, परन्तु जिन लोगो का निर्वाह न हो सके वे पूर्वोक्त जीवो को छोड कर औरो का मास काम मे लाव। शूकरमास निषिद्ध नहीं माना गया। अगर दीन इलाही का कोई मेम्बर चिकवा, कसाई, मछली पकडने वाले, चिडीमार, या वधिक के साथ भोजन करे तो उसकी शुद्धि एक हाथ काट डालने से होती थी।

अकबर को पहले पहल तो विवाहो से सन्तुष्टि न होती थी, परन्तु उसकी बुराई पीछे से उन्हे मालूम हुई, इसलिए उन्होने आज्ञा दी कि दीन इलाही का कोई शिष्य सिवाय अनपत्यता की दशा के द्वितीय विवाह न करे। विधवाविवाह की भी प्रथा चला दी। चचा, मामा आदि निकट सम्बन्ध वालो

की लड़कियों से विवाह करना रोक दिया गया। लड़कियाँ चौदह वर्ष से और लड़के सोलह वर्ष से पहले विवाह नहीं कर सकते थे, क्योकि बाल-विवाह की सन्तान निर्बल होती थी। सती होने का पहले पहल निषेध किया गया, परन्तु हिन्दुओं के कहने सुनने से यह निश्चित रहा कि यदि स्त्री अपनी स्वतन्त्र इच्छा से सती होना चाहे तो हो; उस पर किसी प्रकार का दवाव न डाला जावे।

इस विषय मे एक कथा भी विख्यात है। मालदेव का पुत्र जयमाल बङ्गाल जाते समय मार्ग मे (सन् १५८३ ई०) मर गया। उसके पुत्र उदयसिंह ने चाहा कि उसकी विधवा स्त्री सती हो जावे. परन्तु स्त्री ने इसे स्वीकार न किया। इस पर राजपूतों ने हठपूर्वक उसे लाचार किया, और चिता जला कर उसे ढकेल देना चाहा। अकबर को यह हाल कुछ पहले मिल गया था, वह बड़े वेग से घोड़ा दौड़ाते हुए अकेले उस दृश्य तक पहुँचे. जहाँ दीन स्त्री के अग्नि मे डाल देने की तैयारी हो चुकी थी। प्रथम तो राजपूतों ने अकबर को पहचाना भी नही, और इच्छा की कि इस विघ्नकारक मनुष्य के हथियार छीन कर वाहर निकाल देना चाहिए। परन्तु अल्प काल मे उन्होने अपराध स्वीकार किया, और दुखिया अवला की प्राण-रक्षा हुई।

मुसलमान वालकों का 'ख़तना' (चर्म-कर्तन) वहुत थोड़ी अवस्था मे होता था; अकबर ने आज्ञा दी कि यह रीति वारहवे वर्ष से पहले न हो और फिर.भी उस दशा मे जव कि बालक

स्वयं स्वीकार करे। ज़बरदस्ती न की जावे। नमाज़ पढ़ते समय अनावश्यक आभूषण आदि उतार डाले जाते थे, बादशाह ने आज्ञा दी कि सबसे विभूषित होकर नमाज़ पढ़ना चाहिए। मुसलमानों का परम पवित्र मुख्य धर्मक्षेत्र अरब देश मे 'मक्का' नामक स्थान है जहाँ पर उनके धर्म-प्रवर्तक मुहम्मद का जन्म हुआ था। वह स्थान हिन्दुस्तान से पश्चिम ओर है, इसीलिए इस देश के मुसलमान पश्चिम को पवित्र दिशा मानते हैं; उसी ओर मुँह करके नमाज़ पढ़ते हैं, और गाड़ते समय मुर्दों का शिर उसी ओर रखते हैं। अकबर ने न जाने किस विचार से इससे उलटी प्रथा चलाई। अर्थात् पूर्व ओर शिर और पश्चिम ओर पैर रख कर मुर्दे गाड़े जावे। सम्भव है कि सूर्योदय पूर्व मे होने के कारण ऐसा किया गया हो, क्योकि सूर्य-पूजा दीन इलाही का मुख्य धर्म था।

ऊपर के वर्णनों से प्रकट हो गया होगा कि अकबर बड़े भारी बादशाह तो थे ही, किन्तु उनको अपनी दिव्य शक्ति का भी घमण्ड था। लोगों से परमेश्वर के समान अपना सत्कार कराने मे उन्हे सङ्कोच नही था। आज्ञापत्र निकला कि जैसे नमाज़ के समय ईश्वर के सामने 'सिजदः' (दण्डवत् प्रणाम) होता है उसी प्रकार बादशाह को भी सिजदः किया जावे। इस पर मुसलमान लोग झल्लाए कि ईश्वर के समान मनुष्य का आदर योग्य नही; तब वही आज्ञा फेर फार करके इस प्रकार दी गई कि दण्डवत् प्रणाम तो अवश्य किया जावे, परन्तु उसका नाम

सिजदः न हो, किन्तु 'जमीं-बोस सलाम' (पृथ्वी को चूमते हुए या मस्तक से छूते हुए प्रणाम) हो। इस पर सब लोग शांत हो गये. और कट्टर से भी कट्टर लोग भी जमीबोस सलाम करने लगे। अकबर ने स्वयं दाढ़ी मुँड़ा डाली, उनकी देखा देखी लगभग सभी अमीरों ने ऐसा ही किया।

ऊपर वर्णन हो चुका है कि अकबर अपनी राजपूतनी स्त्रियों के साथ महल मे हवन करते थे। ऐसे समयों पर वे माथे पर तिलक भी लगाते थे, परन्तु यह सब महल के भीतर ही होता था। केवल एक मौके पर वे और उनके शिष्य तिलक लगा कर और यज्ञोपवीत पहन कर बाहर निकले थे; यह काम चाहे धर्म के विचार से हुआ हो या अपना जी बहलाने के लिए, या हिन्दुओं को सन्तुष्ट करने के लिए; अन्तिम कारण का मवसे अधिक संभव है।

दीन इलाही की बहुतेरी बातें हिन्दू धर्म से मिलती हैं, और चूँकि 'अहिंसा परमो धर्मः' के प्रमाण से जीवहत्या करना पाप माना जाता है, इसलिए जहाँ तक हो सके उससे बचाव करने का उपाय किया गया। नीचे लिखे हुए दिनों मे जीव मारने का निषेध हो गया—रविवार अर्थात् इष्ट देवता सूर्य का दिन, वर्ष के प्रथम मास (फाल्गुन-चैत्र) के अठारह दिन, फ़ारसी महीना आबान (आश्विन, अकबर के जन्म का महीना) तथा कुछ और दिन।

यद्यपि अकबर का चलाया दीन इलाही बिलकुल नया मत

और मुसल्मानों से अत्यन्त प्रतिकूल था, तथापि 'महाजनो येन गतः स पन्थाः' बड़े आदमी का अनुसरण सभी करने लगते हैं, अच्छे अच्छे अमीर चेले होने लगते हैं। अबुल्फ़ज़्ल, फ़ैज़ी, इनका पिता मुबारक, अज़ीज़ख़ाँ (अकबर का धात्री-सुत), प्रधान न्यायाधीश, क़ाज़ी, मुफ़्ती आदि उच्च अधिकार वाले सब शिष्य हो गये। हिन्दुओं में केवल राजा वीरबल था। यद्यपि नवीन मत में मुसलमानों की अपेक्षा हिन्दुओं की बहुत सी बातें थीं, तथापि हिन्दुओं को अपना मत बदलना पसन्द नहीं आया। इसी तरह बहुत से मुसलमान भी दृढ़ रहे। राजा टोडरमल, भगवान् दास, मानसिंह, शहबाज़ ख़ाँ आदि ने इन्कार कर दिया। मानसिंह ने तो यहाँ तक कह डाला कि 'यदि मुझे चेला बनाने से आपका यह अभिप्राय हो कि आपके लिए मैं अपना जीवन अर्पण करने के लिए उद्यत हो जाऊँ, तो मैंने राजभक्ति का प्रमाण अच्छी तरह पहले ही दे दिया है, और अब मेरी परीक्षा की आवश्यकता नहीं है। परन्तु यदि दीन इलाही शब्द से किसी धर्म का आशय है तो मेरा धर्म हिन्दू है, और मैं यह भी जानता हूँ कि आप मुझे मुसलमान करना नहीं चाहते। हिन्दू और मुसलमान के अलावा मैं तीसरा धर्म जानता ही नहीं हूँ।

अकबर ने मानसिंह की बातों को बुरा नहीं माना; प्रत्युत कुछ दिनों के उपरान्त धर्म-विषयक सहनशीलता फैल गई। बादशाही आज्ञा हो गई कि कोई एक दूसरे के धर्म में बाधा न डाले;

जिसको जिस प्रकार अच्छा लगे अपना धर्म कर्म करे; न्याय सबके लिए एक है, उसके सामने ग़रीब व अमीर एक समान हैं।

यह देख कर कि बादशाह नवीन मत को बहुत पसन्द करते हैं और शिष्यों को उनके अनुसार अच्छा अधिकार दे देते हैं, हज़ारों छोटे बड़े दीन इलाही ग्रहण करने लगे। यद्यपि प्रधान आचार्य ने इस मत का मुख्य उद्देश यह रक्खा था कि नीच स्वार्थता के वश होकर कोई काम न किया जावे, तथापि 'दुनिया मतलब की है' लोग आर्थिक भलाई ही के लिए शरीक होने लगे। परिणाम यह हुआ कि अकबर के जीवन पर्य्यन्त यह मत भी जीवित रहा; और उनके मरते ही लुप्त हो गया। इस मत की कोई पृथक् धर्म-पुस्तक न लिखी गई जो आगे काम आती।

अब थोड़ी देर के लिए दीन इलाही पर दृष्टि डालिए। इस दीन में तीन बातें मिली हुई थीं—राजनीति, धर्म और तत्त्वज्ञान। राजनीति प्रत्यक्ष है; कोई ऐसाही निकम्मा पुरुष होगा जो शपथ-पूर्वक अपना सर्वस्व अर्पण करके और बादशाह को अपना धर्म-गुरु बना कर फिर सची सेवा से मुँह मोड़े। अकबर के अन्तिम दिनों में जब कि सब योग्य योग्य पुरुष कालकवल हो गये, और शाहज़ादा सलीम ने अपने पिता के प्रतिकूल आचरण किया, उस समय इन्हीं शिष्यों की सच्ची गुरु-भक्ति से उद्धार हुआ। यह कहने की आवश्यकता ही नहीं कि बादशाह ने दीन इलाही में अधिकांश हिन्दू धर्म रख कर हिन्दू प्रजा को अपना लिया।

दीन इलाही में सब प्रकार के धर्म शामिल थे; अधिकांश

हिन्दू धर्म, बहुत कुछ अग्निपूजकों का मत, सूफ़ियों का सिद्धान्त, आदि सबसे मिलाजुला कर यह नया सम्प्रदाय बनाया गया था, जिसका आन्तरिक भाव साधारण लोग नहीं समझ सकते थे। तत्त्वज्ञान सूफ़ियाना था। सूफ़ी लोग मुसलमान थे, परन्तु उनके विचार कुछ कुछ वेदान्त से मिलते थे। द्वैत अद्वैत दोनों प्रकार के विचार थे। प्रथम में परमेश्वर की उपमा 'माशूक़' (जिसका अगाध प्रेम करें) से दी जाती थी, और उसे खोजने वाला भक्त 'आशिक़' माना जाता था। पवित्र, पुण्यमय, सत्वगुण-सम्पन्न प्रेम को 'इश्क़' कहते थे। सब शिक्षित मनुष्यों ने प्रायः हाफ़िज़ और उसकी प्रेममयी फ़ारसी कविता का नाम सुना होगा; यह उच्च श्रेणी का सूफ़ी था। अद्वैत विचारों में परमेश्वर से और अपने आप से ऐसा ऐक्य हो जाता था कि दो का भाव भूल कर एक ही का भान होता था और ज्ञानी पुरुष कहने लगता था कि मैं ही ईश्वर हूँ। चाहे द्वैतभाव हो अथवा अद्वैत हो, सच्चे सूफ़ी किसी से द्वेष नहीं रखते थे, क्योंकि उन्हें सब धर्मों में सार दिखलाई देता था। विपरीत इसके चूँकि सूफ़ियों का मत कट्टर मुसलमानों के अनुकूल नहीं था, इस लिए उन्हें बहुधा दुःख उठाना पड़ता था।

अकबर को सूफ़ी मत बहुत पसन्द था, उसी के सिद्धान्तों से उनकी आत्मा भावित थी, इसी लिए उनमें धर्म-विषयक सहनशीलता आ गई थी। ऊपरी दिखावा भी वैसा ही था। साधारणतः अकबर ऊन का उजला वस्त्र पहनते थे, जिसका भाव यह

था कि जिस प्रकार यह वस्त्र स्वच्छ और रङ्ग रहित है उसी प्रकार मेरी आत्मा भी रागद्वेष से रिक्त है ।

दीन इलाही के बारे में अकबर तथा कुछ एक विद्वानों का जो विचार था वह विषय के गूढ़ होने के कारण जनसमूह की समझ में नहीं आ सकता था । साधारण जन सोचते थे कि अकबर सूर्य्योपासक हैं: यह नहीं जानते थे कि सूर्य्य की आड़ से उस ज्ञाद्धाता की उपासना होती थी जो सर्वतेजोमय और संसार का पालक है और सूर्य्य जिसका चिह्न मात्र है । जो कुछ रहा हो, सर्वसाधारण के हृदय में यह बात अवश्य जम गई थी कि बादशाह में कुछ दिव्य शक्ति है । बहुत से रोगी और दुःखार्त जन महल के आस पास इस लिए एकत्रित होते थे कि बादशाह की अमृतमयी दृष्टि उन पर पड़े तो वे दुःख से मुक्त हो जावें । किसी किसी को श्रद्धा थी कि बादशाह की छुई हुई कोई वस्तु मिल जावे तो अत्यन्त श्रेयस्कर होगी ।

अकबर की अलौकिक शक्ति का ऐसा नाम था कि कई एक क़िस्से-कहानियों में हिन्दुओं ने उन्हें किसी का अवतार मान लिया ।

इसी अलौकिक शक्ति को सुन कर बहुत से साधु, योगी, और फ़क़ीर बादशाह से मिलने आते थे और अपनी 'करामातें' भी दिखाते थे: परन्तु अकबर को उनके सब दाँव-पेंच मालूम थे । इन लोगों के रहने के अर्थ उन्होंने फ़तेहपुर सीकरी के बाहर हिन्दुओं के लिए धर्मपुर और मुसलमानों के लिए ख़ैरपुर

बनवा दिया था । इन्हीं के पास एक स्थान 'शैतानपुर' भी बनवाया जहाँ रंडियाँ टिकती थीं । दीन इलाही के अपराधी चेलों को भी यहाँ रहना पड़ता था; बीरबल को एक बार यहाँ दण्ड भुगतना पड़ा था ।

दीन इलाही में व्रतों की भरमार थी । आचार्य्य और उनके शिष्य शुक्रवार और रविवार को व्रत रखते थे; कुछ दिनों के बाद हर सूर्य्यसंक्रांति का प्रथम दिन, सूर्य्य-ग्रहण,चन्द्रग्रहण के दिन, दो व्रतों के बीच वाला दिन, बादशाह के जन्म मास में हर एक चन्द्रवार, हर सौरमास का जल्से वाला दिन, फ़र्वरदिन (फाल्गुन) और अबान (आश्विन) के पूरे पूरे महीने व्रत के लिए नियत किये गये । व्रत के लिए हर साल पाँच दिन बढ़ाये जाते थे ।

अकबर की उदारता से बड़े बड़े दान भी होते थे—हर साल वर्ष-प्रवेश के दिन वे बारह तुलादान इन वस्तुओं से करते थे—सुवर्ण, चाँदी, पारा, रेशम, सुगन्धद्रव्य, ताम्र, शोरा, ओषधियाँ, घृत, लोहा, चावल, दुग्ध व लवण-युक्त सप्त धान्य । यह सब पदार्थ दरिद्रों, और साधारणतः ब्राह्मणों को दिये जाते थे । मुसलमानी हिसाब से जिस दिन नया वर्ष लगता था उस दिन केवल इन वस्तुओं से दान होता था—चाँदी, टीन, कपड़ा, सीसा, फल, तेल और तरकारी । शहज़ादों का तुलादान वर्ष-प्रवृत्ति के दिन प्रथम वर्ष में एक धान्य से, द्वितीय वर्ष में दो धान्यों से और इसी प्रकार आठ दश या बारह धान्यों तक होता था ।

वर्ष-प्रवेश के दिन बादशाह जितने वर्ष के होते थे उतनी भेंटे बकरियां और मुर्गियां आदि जीवरक्षकों को दी जाती थी। बहुत से लोगों का अपराध उस दिन क्षमा कर दिया जाता था, सैकड़ों कैदी छोड दिये जाते थे और सैकड़ों छोटे छोटे जीव बन्धन से मुक्त होते थे।

अध्याय ८

व्यक्ति-विषयक, दरबार।

अभी तक हमने अकबर का प्रायः राजविषयक वर्णन दिया है, यहां पर कुछ व्यक्ति-विषयक विचार होना चाहिए। यह सर्वथा असम्भव है कि दोनों विषय बिल्कुल अलग अलग कर दिये जावें, क्योंकि दोनों में घनिष्ठ सम्बन्ध है; तथापि यहां पर वे बातें दी जाती हैं जो केवल मनुष्य की हैसियत से—राजा की हैसियत से नहीं—अकबर में पाई जाती थीं। जहां तक हो सकेगा हम यह भी दिखलाने का उद्योग करेंगे कि इन बातों का प्रभाव राज्य पर कैसा और क्यों कर पड़ा। इससे यह भी स्पष्ट हो जावेगा कि यद्यपि छोटी छोटी और गौण बातें स्वयं बहुत कुछ नहीं होतीं, तथापि अन्य विषयों पर बड़ा प्रभाव डालती हैं।

महापुरुष और साधारण जन में यह भेद है कि साधारण जन अपने समय की दशा से दब जाता है; 'जैसा देश वैसा वेष' करने लगता है, प्रचलित बातों को क्रमशः ग्रहण करके साधारण विचारों से भावित हो जाता है; जैसा और लोग करते हैं वैसा ही करता है; एक तो उसे बुराई दिखाई नहीं देती, और

छिराई भी देती है तो उसका परिहार नहीं सूझता. सबसे मुख्य बात यह है कि दृढ़ता नहीं होती, वह बुराई को जैसी की तैसी छोड़ देना पसन्द करता है, परन्तु अपने आप को जोखिम मे डालना नहीं चाहता; ऐसे मनुष्य के मन मे उपकार से अधिक स्वार्थ का विचार और निर्भयत्व से अधिक भीरुता होती है, दृढ़ता नहीं होती . फल यह होता है कि वह साधारण का साधारण ही बना रहता है।

इसके विपरीत, महापुरुष समय की दशा से नहीं दबता, किन्तु अनुकूल अवसर पाकर उस पर लात धर कर ऊपर चढ़ जाता है. सामयिक बातों के रंग से रंग जाने के विरुद्ध उन बातों पर अपना गहरा रङ्ग चढ़ा देता है. 'जैसी बहे बयरिया तैसी दीजे पीठ' का उपदेश नहीं मानता, प्रत्युत जिधर पीठ देता है उधर ही बयार बहाता है, अपने को प्रचलित विचारों के ढाँचे मे नहीं ढालता. किन्तु अपने ही ढाचे मे पुराने गन्दे विचारों को नये सिरे से ढालता है; बड़ी बड़ी कठिनाइयाँ उठाने पर भी अपनी दृढ़ता नहीं छोड़ता, और देश मे एक नया जीवन फैला ही देता है।

यह आदर्श महापुरुष के लक्षण हैं; अकबर आदर्श महापुरुष नहीं थे. परन्तु इसमे सन्देह नहीं कि उनकी दृढ़ता परले दर्जे की थी और उन्होने देश-काल पर अपना प्रभाव डाल दिया। आन्तरिक बलवान् आत्मा के सिवाय वाह्य कारण भी इसके लिए थे। पिता के भागते समय जन्म होना, बालावस्था मे

एक स्थान पर स्थिर न रहने पाना, शत्रु-रूप चचा के हाथ में पड़ जाना, पहाड़ी देशों के दुःख झेलना, राजकुमारों के से लाड़ प्यार से दूर रहना आदि कारण ऐसे थे जो अकबर के धैर्य, साहस, दृढ़ता, सहनशीलता आदि गुण बढ़ाते गये।

प्रथम विद्याभ्यास का उपाय किया गया। हुमायूँ स्वयं ज्योतिषी था, उसने अकबर के पञ्चम वर्ष में शुभ मुहूर्त विचार कर अक्षरारम्भ की तैयारी की। समय आने पर अकबर लुप्त हो गये और खोज करने से भी न मिले। उनको जन्म भर अक्षर-परिचय न हुआ; इतने बड़े बादशाह होकर भी पढ़ने-लिखने से वञ्चित रहे। मुनीमख़ाँ ने उन्हें नृपजनोचित शिक्षा दी, अर्थात् बैठने उठने, चलने फिरने, बात चीत करने, हथियार बाँधने, निशाना लगाने, सवारी करने, शिकार खेलने आदि की कलायें सिखलाईं। इन सब बातों में अकबर परम प्रवीण निकले। रात्रि दिन कठिन काम करने से भी उन्हें थकावट नहीं आती थी और कठिनता के समय उनका साहस और धैर्य अटल हो जाता था।

निरक्षर होने पर भी क्या अकबर अविद्वान् थे? कदापि नहीं; अक्षर-परिचय के सिवाय उनमें सब बातें पूर्ण विद्वत्ता की थीं। बाल्यावस्था में मीर अब्दुल्लतीफ़ ने उन्हें हाफ़िज़ की ग़ज़लें सिखाई थीं, जिनके द्वारा सूफ़ी सिद्धान्तों की जड़ उनके हृदय में गड़ गई। यह योग्य शिक्षक बड़ा गम्भीरमति और शान्त-स्वभाव था, और इसी की शिक्षा से अकबर के हृदय में धर्म-

विषयक सहनशीलता और शान्ति का प्रादुर्भाव हुआ। जब उपजाऊ भूमि में अच्छा बीज पड़ता है और खाद पानी आदि आवश्यक सामान भी मिलता है तो पैदावार भी अच्छी होती है. अकबर के होनहार हृदय में अब्दुल्लतीफ़ की शिक्षा जम गई। उसने ख़ूब समझा दिया कि हिन्दुस्तान से देश में जहाँ नाना भाषा बोलने वाली और नाना-धर्मावलम्बिनी प्रजा रहती है सिवाय सहनशीलता के अन्य कोई उपाय सिद्धि का नहीं है। इस बात का प्रमाण भी अकबर को पूर्व-शासकों की राज्य-प्रणाली का परिणाम देख कर मिल गया था।

विविध विद्याओं के पण्डितों की संगति करने से अकबर की बुद्धि तीक्ष्ण हो गई थी, उन्हें सब साधारण बातों का अच्छा ज्ञान हो गया था। उन्हें विद्याभ्यास में बड़ी रुचि थी। फ़ारसी के ग्रन्थों के अलावा उन्होंने रामायण, महाभारत, लीलावती आदि का अनुवाद संस्कृत से फ़ारसी में कराया, और स्वयं उसमें सहायता दी। इनका मान आदर देख कर योग्य योग्य विद्वान दूर दूर से राज-सभा में आते थे।

अकबर के पुत्र जहाँगीर ही ने अपने पिता के रूप-रेखा का वर्णन यों किया है कि वे न बहुत ऊँचे थे, न छोटे थे; साधारण डीलडौल से कुछ ऊँचाई लिये हुए थे; गेहुवाँ रंग था जिसमें कुछ श्यामता मिली थी; काली आँखें और भौंहें थीं; शरीर गठा हुआ, माथा चौड़ा, छाती खुली हुई, भुजा और हाथ लम्बे थे। नाक के बाईं ओर छोटे मटर के बराबर मस्सा बड़ी शोभा देता

था और सामुद्रिक विद्या के अनुसार समृद्ध धन-धान्य का लक्षण था। ध्वनि गम्भीर और वार्त्ता कर्णमधुर तथा उच्चता-सूचक थी। उनकी चाल ढाल अन्य लोगों से भिन्न थी और चेहरा दिव्य ज्योति से दमकता था। वाक्यक्रम मोहनकारी और शरीर में सिंह के समान बल था।

अकबर के कर्मों को देख कर यह निश्चय किया जाता है कि उनकी प्रकृति सौम्य थी और दूसरों के हृदय में प्रेम उत्पन्न कर सकती थी; मित्रों के साथ सत्यता का बरताव होता था; न्याय दया से मिश्रित होता था, बदला लेने से क्षमा कर देना अधिक प्रिय था, यद्यपि आवश्यकता पड़ने पर वे अपना हृदय प्रस्तर-सदृश भी कर सकते थे। दूसरों के सुख पर ध्यान था, उदारता भरी थी, और सुधार करने में दण्ड देने से अधिक रुचि थी। चरित्र की दृढ़ता सर्वोपरि थी। युद्ध से उत्पन्न आनन्द ही के लिए युद्ध करना उन्हें पसन्द नहीं था; किन्तु जब देख लेते थे कि अन्य उपाय से सिद्धि न होगी तब युद्ध की आज्ञा देते थे।

विवाह-विषय में अकबर के विचार कुछ ढीले थे। यद्यपि अन्तिम दिनों में उन्होंने औरों के लिए यह नियम बनाया कि सन्तान न होने के सिवाय अन्य दशा में एक स्त्री के सिवाय दूसरा विवाह न किया जावे, तथापि उन्होंने स्वयं कई विवाह किये। पहला विवाह अपने चचा हिंदाल की लड़की से किया, जिससे कोई सन्तान न हुई; एक अपनी फूफू की लड़की

से किया। एक विवाह राजा बिहारीमल की लड़की से किया। अन्य विवाह अब्दुलवासी की विधवा से किया। जोधपुर की राजकुमारी से एक किया जिससे सलीम की उत्पत्ति हुई। बैरामखाँ की विधवा से भी किया। इनके अतिरिक्त और कई मुसलमान बेगमें थीं।

कई एक उपन्यासकारों ने यह चित्र खींचा है कि अकबर अत्यन्त विषय-लुब्ध थे और काम-कला से उन्मत्त होकर स्त्रियों का सतीत्व भङ्ग कर देते थे, यहाँ तक कि किसी अवसर पर किसी वीरवधू ने कटार लेकर उन पर आक्रमण भी किया और क्षमा के लिए प्रार्थना करने पर उन्हें जिन्दा छोड़ा। कोई आश्चर्य नहीं कि यदि ऐसा हुआ हो; क्योंकि 'विधि प्रपंच गुण अवगुण साना' एक ही पुरुष में सब बातें नहीं अच्छी होतीं, कहीं न कहीं अवश्य चूक पड़ जाती है। हाँ, अकबर की विवाहिता स्त्रियों के बारे में इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि राजनैतिक कारणों से उन्होंने बहुत से विवाह किये। जिसके घर से विवाह सम्बन्ध होता था वह अवश्य कुछ न कुछ प्रेम मानता था और विरुद्ध क्रिया नहीं करता था।

साधारण दिनों में जब कि युद्ध आदि से निश्चिन्तता रहती थी तब अकबर का समय-विभाग इस प्रकार होता था—वे रात्रि के पिछले पहर तक इबादतख़ाने में विद्वानों के वाद-विवाद और तर्क-वितर्क सुनते थे जिसके बाद गाना-बजाना होता था। प्रातः-काल वे अपने महल को जाते थे और स्नान, वस्त्राच्छादन

आदि से कोई एक घंटे मे निवृत्त होकर दरबारियों का सलाम स्वीकार करते थे। इसके उपरान्त कभी शिकार के लिए बाहर जाते थे, कभी सभा मे बैठ कर राज्य-काज करते थे। दोपहर के लगभग भोजन होता था, परन्तु इसके लिए कोई ठीक समय नही नियत था। अकबर केवल एक ही बार भोजन करते थे, और वह भी बहुत सादा, भोज्य पदार्थ अर्धपक रक्खे जाते थे, और आज्ञा पाते ही एक घंटे के अन्दर तैयार कर दिये जाते थे। दोपहर के पश्चात् सोने का समय था। सन्ध्या समय मे प्राय: चौगान का खेल होता था।

चौगान का खेल आधुनिक 'पोलो' की तरह होता था; इस देश की तीव्र उष्णता के कारण दिन के समय यह खेल रोचक नही होता था, इसलिए अकबर ने रात्रि मे खेलने की प्रथा निकाली। पलाश वृक्ष की लकड़ी से गेंद बना कर उनमे आग लगा दी जाती थी; आग धीरे धीरे सुलगती थी और खेलने वालों को उसकी दमक से निशाना लगाने मे सुगमता होती थी। यह खेल अकबर को बहुत पसन्द था; उनके समान दूसरा कोई खिलाड़ी नही था।

जी बहलाने की सामग्री जितनी बाहर थी उतनी भीतर भी थी। रनिवास मे पचीसी का खेल चलता था, परन्तु अकबर की पचीसी असाधारण थी। गोटों के स्थान पर स्त्रियाँ खड़ी होती थी, जो इधर उधर गोटों की तरह दौड़ा करती थी। ताश भी खेले जाते थे, परन्तु चार रंगों वाले ताश नही। अकबर

की गड्डी मे बारह बादशाह थे और खेल बहुत पेचीदा होता था। यह सब नई बातें बादशाह ने स्वयं अपनी रुचि से निकाली थीं। राजपूतनी स्त्रियों के साथ होम करने और तिलक आदि हिन्दू चिह्न धारण करने का वर्णन अन्यत्र है। कभी कभी वे यूरुपीय बाना बना कर रनिवास मे हास्य करते थे। रनिवास मे स्त्रियों की संख्या कम नहीं थी: लौंडी बाँदी मिला कर कोई पाँच सहस्र से ऊपर थीं।

ज्यों ज्यों समय बीतता गया, अकबर की विषय-लोलुपता भी कम होती गई. दीन इलाही के कारण और भी प्रतिबन्ध हो गया। एक बार का सादा भोजन, उसमे भी प्राय: मांसादि से परहेज़, बहुत से व्रत, सूफी सिद्धान्तों का धारण, अवस्था का परिवर्त्तन, इन सब बातो से स्वभावत: सत्व गुण का विकाश और रजोगुण तमोगुण का ह्रास होता गया: विषय-भोग की लोलुपता कहाँ से आवे।

अकबर के तीन पुत्र थे, शहज़ादा सलीम, शहज़ादा मुराद और शहज़ादा दानियाल। ये तीनों तीन राहों पर लगाये गये। ज्येष्ठ पुत्र सलीम को मुसलमानी मत के अनुसार शिक्षा दी गई। मुराद को पुर्तगीज़ पादड़ी ईसाई मत के सिद्धान्त सिखाते और पुर्तगीज़ भाषा सिखाते थे; दानियाल को ब्राह्मण लोग शिक्षा देते थे। अकबर का मतलब था कि मेरे पीछे भी लड़कों मे उदार वृत्ति और धार्मिक सहनशीलता बनी रहे, इसी लिए उन्होने लड़कों के ध्यान भिन्न भिन्न ओर आकर्षित किये। साथ

ही साथ फ़ारसी शिक्षा के लिए योग्य योग्य अध्यापक रक्खे गये थे। इन तीनों में एक बात समान थी कि सब के सब उच्च श्रेणी के मद्यप थे। इस व्यसन के छुड़ाने के लिए कितने ही उपाय किये गये, सब निष्फल हुए; प्रत्युत उसकी इतनी वृद्धि हुई कि मुराद और दानियाल को यौवनावस्था ही में यम-सदन पहुंचा दिया। सलीम का व्यसन भी जीवन-पर्य्यन्त रहा।

अकबर को लड़कपन में कबूतर उड़ाने की बड़ी रुचि थी, परन्तु बादशाहत की गम्भीरता आने पर यह चस्का छूट गया। पिछले दिनों फिर शौक़ हुआ, परन्तु अब की बार वैज्ञानिक सम्बन्ध से। वे भिन्न भिन्न जातियों के नर-मादा से नई नई जातियां और विचित्र विचित्र रंग पैदा कराते थे। कोई बीस सहस्र से ऊपर कपोत-गण महल के ऊपर चक्कर काटा करते थे; इनमें से कोई पांच सौ अत्यन्त उत्तम जाति के थे।

अकबर को शिकार का भी शौक़ था। लड़ाइयों के समय भी कुछ न कुछ अवकाश मिल जाता था तो वे मृगया के लिए बाहर निकल जाते थे। कभी कभी पड़ाव पर कुल शिकार अमीरों को बांट दिया जाता था, क्योंकि बादशाह को आमिषाहार से अधिक प्रीति नहीं थी। इस व्यसन से वे दोहरा काम लेते थे; एक शारीरिक व्यायाम और दूसरे प्रजा की भली बुरी दशा का ज्ञान। बड़े बड़े राजनैतिक कामों की जड़ प्राय: शिकार ही के बहाने डाली जाती थी।

अकबर को मृगया का शौक़ ही नहीं किन्तु अभ्यास भी था,

उनका निशाना शायद कभी ही ख़ाली जाता हो। शिकार कभी बंदूक़ से होता था कभी शिकारी जीवो के द्वारा, गड्ढों मे गिरा कर तेदुवे पकड़े जाते थे और कुछ दिन सिखला कर पालतू कर लिये जाते थे, इनके द्वारा शिकार होता था। कई देशो से अच्छे अच्छे वाज़ मँगाये गये थे और उत्तम जाति वाले शिकारी वाज़ के दाम मुँह-मांगे मिलते थे।

विविध जीवों का स्वजातीय अथवा विजातीय युद्ध उन्हे वहुत पसन्द था। मल्ल हाथियों का युद्ध परम्परा से चला आता था; लड़ने वाले वैल वड़े यत्न से रक्खे जाते थे, मेढे और वनैले शूकरों की लड़ाई वहुधा होती थी, ऊँटों से भी कभी कभी तमाशा किया जाता था। एक विचित्र वात यह थी कि मकड़ियाँ पकड़ पकड़ कर लड़ाई जाती थी, गौरैया और छोटी गलारों पर वड़े वड़े मेढक उनके निगलने के लिए छोड़े जाते थे।

ऊपर लिखी हुई वातों मे से वहुत सी वातें ऐतिहासिक दृष्टि से व्यर्थप्राय हैं परन्तु उन सवसे यह सिद्ध होता है कि ईश्वर ने अकवर को महत्त्व दिया. और उन्होने उस महत्त्व को स्थायी रक्खा, नष्ट नही होने दिया। जो पुरुष चौदह वर्ष की अवस्था मे इतने वड़े देश का अधिपति वना दिया जावे, जिसके चारों ओर शत्रु ही शत्रु हों, और जिसको अपनी वुद्धि ही द्वारा सव सँभालना पड़े, उसके महत्त्व मे कोई सन्देह नही हो सकता। अकवर की दृढ़-चरित्रता का यह पक्का प्रमाण है कि एकच्छत्र राज्य करने पर भी उन पर चापलूसी का वुरा प्रभाव

न पड़ा और उन्होंने अन्तिम समय तक शारीरिक व मानसिक काम करना न बन्द किया। यह बड़े आश्चर्य का विषय है कि एक ही आदमी राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक और विद्या-सम्बन्धी सुधार करे और फिर भी अपने को भिन्न मत वालों के पंजे से बचावे। विशेषतः जो समर्थ पुरुष राज्य-सम्बन्धी कार्यों में धर्मादि का कुछ भी विचार न करे, किन्तु गुणग्राहकता ही दिखलावे और भिन्न भिन्न धर्मावलम्बियों को एक दृष्टि से देखे, उसकी उदारचित्तता में कोई सन्देह नहीं हो सकता।

अध्याय ६

राज्य-प्रबन्ध—दरबार; टोडरमल का बन्दोबस्त।

दीन इलाही और व्यक्ति-विषयक वर्णन मे अकबर का राज्य-प्रबन्ध भी कही कही आ गया है, परन्तु उसका विशेष वर्णन इस अध्याय मे होगा।

अकबर के पास जैसा राज्य था वैसा ही दरबार का ठाट बाट था। विशेष दिनों मे वे चन्दन और हाथी-दाँत निर्मित राजसिंहासन पर 'चहार-ज़ान्' अर्थात् पैर के घुटनों के नीचे के भाग रानों के नीचे दबा कर बैठते थे, पीछे से छत्र लगाया जाता था और चँवर हिलाये जाते थे। कुछ दूरी पर प्रधान प्रधान अमीर, मन्त्री, सेनापति जिनमे से बहुत से दीन इलाही के चेले थे, बैठते थे, उनके पीछे यथाक्रम अन्य लोग बैठते थे। आम दरबार मे आने की आज्ञा सबको मिल जाती थी, परन्तु वहाँ पर नियत क्रम से सलाम करना पड़ता था। सलाम के दो भेद थे 'तसलीम' और 'कोर्निश'। तसलीम करने वाला अपना दाहिना हाथ पृथ्वी पर रखता था जिसमे हथेली ऊपर रहे और यहाँ तक झुकता था कि शिर नीचे लटकने लगे, फिर धीरे धीरे खड़ा होकर हाथ

ऊपर उठाता जाता था और सीधा हो जाने पर हाथ माथे तक लाता था। कोर्निश में हाथ पृथ्वी पर रखने की आवश्यकता नहीं थी, केवल मस्तक अच्छी तरह झुका कर हाथ पर रख लिया जाता था। आते जाते समय और मंसब या जागीर या वस्त्र या घोड़ा हाथी कुछ पाने पर तीन तसलीमें करनी पड़ती थीं। सिज्दः का कुछ वर्णन पहले आ चुका है; यद्यपि साधारणतया कट्टर मुसलमानों ने इसे स्वीकार न किया, तथापि दीन इलाही के चेले गुरु के सामने सिज्दः करने में कोई संकोच नहीं करते थे। आम दरबार में सिज्दः की आज्ञा नहीं थी।

बड़े बड़े आदमियों को मानसूचक पदवियाँ दी जाती थीं, जैसे, 'ख़ाँ', 'ख़ानख़ानां', 'ख़ाने आज़म', 'राजा', 'कविराय' आदि। परन्तु इनसे भी आवश्यक सेना-सम्बन्धिनी पदवियाँ थीं। यह मान लिया गया था कि हर एक अमीर को युद्ध में जाने का अधिकार है और समय पड़ने पर जाना पड़ेगा, चाहे उसे युद्ध करना आता हो या न आता हो। इसी विचार से पंजहज़ारी, चहार हज़ारी, यकहज़ारी आदि पदवियाँ दी जाती थीं, जिनका अर्थ था पाँच सहस्र या चार सहस्र या एक सहस्र सेना का सेनापति, जैसे अँगरेज़ों के यहाँ जनरल, कर्नल, मेजर आदि पद होते हैं। सबसे बड़ा दर्जा पंचहज़ारी का था।

इन पदवियों से यह आशय कदापि नहीं था कि 'यकहज़ारी' को एक सहस्र से अधिक सेना लड़ाई के समय न दी जावे। वह बात ही अन्य थी; यदि वह योग्य हो तो दस

सहस्र, वीस सहस्र सेना का सेनापति लड़ाई के समय हो सकता था। फ़ैज़ी और अवुल्फ़ज़्ल भी जो विद्वानों के अग्रणी थे परन्तु युद्ध का काम कुछ भी नहीं जानते थे इन पदवियों से शोभित थे। ऐसे उपाधिधारियों को भी मौक़ा काम सीखने का मिल जाता था।

पुराने क्रम के अनुसार वड़े वड़े कर्म्मचारियों और सैनिकों को उनकी सेवा के वदले मे जागीरें दी जाती थी, परन्तु अकवर को यह शैली अच्छी न लगी क्योकि जागीरदार लोग पृथ्वी को अपनी समझ कर प्रजा से जितना कर चाहते थे वसूल कर लेते थे और उनको नाना प्रकार के दण्ड देते थे। इसी लिए नौकरी के वदले नक़द रुपया वेतन मे दिया जाने लगा और जागीरें ज़ब्त कर ली गईं।

अलवत्ता राज्य के सामन्तों अर्थात् आश्रयीभूत छोटे छोटे राजाओ और अमीरों के पास वड़ी वड़ी जागीरें रहीं, जिनके वदले वे लोग नियत संख्या मे घोड़े, और सिपाही रखते थे और वादशाह की आज्ञा पाते ही लड़ाई मे सहायता करने के लिए आते थे। परन्तु यह काम भी कपट से ख़ाली नही था; जागीरदार लोग नियत संख्या से वहुत कम घोड़े रखते थे और जाँच के समय अपने पड़ोसियों और मित्रों से मँगनी लेकर दिखला देते थे। इस दोष को दूर करने के लिए वादशाह ने जानवरों के दाग़ लगाने की प्रणाली निकाली जिससे एक जागीरदार के नाम से जाँचा हुआ और गिना हुआ जानवर दूसरा जागीरदार

नहीं दिखा सकता था। इस क्रिया से जागीरदारों में बड़ा आतङ्क छा गया; और इसी के कारण राज्य-प्रबन्ध में कुछ कठिनाई भी पड़ी। परन्तु अकबर ने अपनी दृढ़ता नहीं छोड़ी।

अकबर के राज्य में पहले यह बारह सूबे थे—अवध, अजमेर, अहमदाबाद, आगरा, इलाहाबाद, काबुल, दिल्ली, बंगाल, बिहार, मालवा, मुलतान और लाहौर। पीछे से अहमदनगर, ख़ानदेश और बरार के तीन सूबे और मिल कर कुल पन्द्रह हो गये। हर सूबे के कई कई भाग थे जिनको 'सरकार' कहते थे; कुल राज्य में १०५ सरकारें थीं। हर सरकार के छोटे छोटे भागों को 'परगना' या 'महाल' कहते थे। कई परगने मिल कर 'दस्तूर' कहलाते थे और एक बड़े अफ़सर के अधीन रक्खे जाते थे।

अकबर के समय से पहले ज़मीन एक रस्सी से नापी जाती थी जिसे 'जरीब' कहते थे। एक तो जरीब की लम्बाई भिन्न भिन्न सूबों में भिन्न भिन्न होती थी, और दूसरे वर्षा समय में रस्सी के सिकुड़ जाने और ग्रीष्म में बढ़ जाने के कारण नाप ठीक ठीक नहीं हो सकती थी। इस दोष को दूर करने के लिए अकबर ने एक नये प्रकार की जरीब चलाई जिसमें बाँस के टुकड़े लोहे के छल्लों के द्वारा जोड़ दिये जाते थे, और जिसकी लम्बाई ६० इलाही गज़ होती थी। इलाही गज़ का प्रमाण ४१ अंगुल अर्थात् अँगरेज़ी गज़ के बराबर ही था। एक जरीब लम्बा और उतना ही चौड़ा खेत एक बीघा होता था, अर्थात् एक बीघे में ३६०० वर्ग गज़ होते थे।

इस जरीब से राज्य की कुल ज़मीन नापी गई और उसके कई भेद माने गये। (१) जोतारू, जिसमे बराबर खेती होती रही हो; (२) पड़ती, जो उपजाऊ करने के लिए कुछ दिन खेती के काम मे न लाई जावे; (३) चाचर, जो चराई, लड़ाई, बढ़िया या अन्य किसी कारण से तीन चार वर्ष न जोती गई हो; (४) बञ्जर, जो कभी तोड़ी न गई हो। हर किसान को सब तरह की थोड़ी थोड़ी ज़मीन दी जाती थी; लगान किसी का कम, किसी का अधिक होता था; परन्तु औसत मे कुल पैदावार का एक तिहाई पड़ता था।

किसान की रुचि पर लगान मे अनाज या नक़द रुपया लिया जाता था; फ़स्ल तैयार होने पर कभी उसका एक भाग खेत मे खड़ा ही खड़ा दे दिया जाता था; कभी कनकूत करके लगान का अन्दाज़ा होता था; कभी बोझ गिन कर बाँट लिये जाते थे; और कभी तैयार होने पर अनाज बाँटा जाता था। यदि नक़द रुपया देना चाहे तो बाज़ार के भाव से दे दे। मूली, गाजर, नील, गन्ना आदि बोने पर लगान नक़द ही लिया जाता था।

इस प्रकार लगान वसूल करने मे बड़ी कठिनाई पड़ती थी और आमिल लोग बहुत सा सरकारी रुपया खा जाते थे; इसलिए राजा टोडरमल ने दस वार्षिक बन्दोबस्त की रीति निकाली। पुराने दस वर्ष के लगान का औसत निकाल कर वही नियत लगान माना जाता था और स्याहा खाता आदि रजिस्टर

इस प्रकार रक्खे जाते थे कि आमिलों की बेईमानी पकड़ ली जावे। रसीद भी दी जाती थी, परन्तु उसमें दूसरे अफ़सर के हस्ताक्षर होते थे। हर महीने का ब्योरावार हिसाब राज्य के मुख्य मन्त्री के पास रहता था। और स्वयं बादशाह के सामने पेश होता था। पहले पहल आमिल लोग बड़े बड़े माल मार बैठते थे, परन्तु जाँच होने पर पकड़े जाते थे और राजा टोडर-मल के दृढ़ प्रबन्ध से नाना प्रकार का कठिन दण्ड पाते थे। अकबर के हृदय में भी इस विषय में दया नहीं थी; वे सरकारी रुपया खा जाने और घूँस लेने के बड़े विरोधी थे और इस प्रकार के अपराधियों को आदर्श रूप दण्ड देते थे। तब भी राजधानी से दूरवर्त्ती देशों में आमिल लोग अपनी कारखाई से नहीं चूकते थे।

इसका कारण यह था कि आमिलों को बड़े बड़े अधिकार दिये गये थे; प्रजा की भलाई बुराई का भार उन्हीं के शिर पर था; वे लोग जिस कुटुम्ब से तुष्ट या रुष्ट होते थे उसे क्रम से स्वर्गलोक के सुख या अधोलोक के संकट पृथ्वीमण्डल पर ही दिखला देते थे। झगड़ों का तोड़ करना, देश में शान्ति रखना, और निग्रह अथवा अनुग्रह के लिए बादशाह से सिफ़ारिश करना उन्हीं का काम था। बादशाह का नित्य उद्योग यही रहता था कि सच्चे और ईमानदार लोगों को ही ऐसे अधिकार दिये जावें; परन्तु ऐसे लोगों का मिलना असंभवित नहीं तो कठिन अवश्य था।

टोडरमल के बन्दोबस्त में काम तो सहज हो गया, और किसानों को भी एक प्रकार की स्वच्छन्दता मिल गई, परन्तु एक बुराई यह पैदा हुई कि चाहे खेत में छटांक भर भी अनाज न हो, लगान पूरा पूरा देना पड़ता था: अतिवृष्टि, अनावृष्टि, सूखा, शलभ, वज्रपात आदि चाहे जो ईतियाँ हों, बेचारे किसानों को घर-खर्च बेच कर भी सरकारी लगान भरना पड़ता था।

शाही सेना के आने जाने, पड़ाव डालने, और युद्ध करने से किसानों को जितनी हानि होती थी वह कौड़ी कौड़ी दे दी जाती थी। सेना के कूच कर जाने पर कुछ बड़े अफ़सर पीछे रह जाते थे और हानि की पूरी पूरी जांच करके या तो वहीं पर रुपया दे देते थे या उसका हिसाब आमिल के पास भेज देते थे और हानि का रुपया लगान से काट दिया जाता था।

लगान में पुराने से पुराना और बहुत घिसा रुपया ले लिया जाता था, और टकसाल में गला दिया जाता था; इससे राज्य को कुछ हानि तो पहुँचती थी, परन्तु प्रजा को सुख था। यथार्थ में ऐसी हानि राजा ही को उठानी भी चाहिए, क्योंकि प्रजा को जैसा सिक्का मिलता है वैसा ही वह देती है। इसके अलावा किसानों के कई टैक्स भी माफ़ कर दिये, जैसे गौ-बैल आदि जानवरों का टैक्स, पेड़ों का टैक्स। व्यापार की उन्नति के लिए नावों, घाटों और पुलों का टैक्स कम करके उसका अच्छा प्रबन्ध कर दिया गया।

टोडरमल का बन्दोबस्ती महकमा बहुत बड़ा था, बड़े से बड़े

अफ़सरों से लेकर छोटे छोटे मोहर्रिरों तक हज़ारों आदमी उस महकमे में काम करते थे। इस समय तक सब हिसाब किताब हिन्दी या 'कैथी' में होता था और अधिकांश यह काम हिन्दू करते थे; परन्तु टोडरमल की आज्ञा से फ़ारसी अक्षरों का लिखना आरम्भ हुआ और कुल हिसाब किताब फ़ारसी में बदल दिया गया। यद्यपि राजा टोडरमल के समान कट्टर हिन्दू और दृढ़चरित्र मन्त्री का हिन्दी पर ऐसा प्रहार करना प्रशंसनीय नहीं, तथापि ऐसा करने में कुछ हिकमत देखी गई थी। राज्य के उच्च अधिकार फ़ारसी जाननेवालों ही को दिये जाते थे, क्योंकि हिसाब किताब के अतिरिक्त अन्य लिखा-पढ़ी फ़ारसी में होती थी। हिन्दू लोग प्रायः फ़ारसी नहीं पढ़ते थे और छोटे छोटे अधिकारों ही से सन्तुष्ट हो जाते थे; इसलिए टोडरमल ने सोचा कि हिन्दी का कुछ भी काम न रक्खा जावे तो लोग फ़ारसी पढ़ने लगेंगे और मुसलमानों ही के समान उच्च पदों के अधिकारी हो जावेंगे। राजा टोडरमल का कदाचित् यह भी विचार रहा हो कि जाति-विषयक सहनशीलता जैसी अकबर में थी वैसी आगामी बादशाहों में न होगी, और किसी न किसी समय हिन्दी का बहिष्कार अवश्य हो जावेगा; इसी लिए उसने पहले ही से यह प्रबन्ध किया कि हिन्दू लोग भी फ़ारसी पढ़ें।

अकबर के समय में राज्य की कुल मालगुज़ारी अँगरेज़ी सिक्कों के अनुसार दो करोड़ पौंड से अर्थात् तीस करोड़ रुपये

से कुछ अधिक थी, परन्तु हानि-लाभ उठा कर उसका औसत २० करोड़ रुपया होता था। आय और व्यय के महकमे बिलकुल अलग अलग रक्खे जाते थे और हिसाब के रजिस्टरों की सख्त जाँच होती थी। प्रधान॰ कोषागार के समीप रुपया लेने वालों की बड़ी भीड़ रहती थी।

अकबर के समय मे ४२ टकसाले थीं जिनमे से २८ मे केवल तांबे के सिक्के ढाले जाते थे; १० मे तांबे और चांदी की टकसालें होती थीं, केवल ४ टकसालों मे ताँबा और चाँदी के अलावा सोना भी ढाला जाता था। अकबर को इस बात की बड़ी चिन्ता थी कि जो धातु ढाली जावे वह बिलकुल शुद्ध और स्वच्छ हो; किसी प्रकार का भी मेल न होने पावे। अकबरी मोहर की शुद्धता मसल मे भी कही जाती है। तीन प्रकार की मोहरे जलाली, धन, मन, जिनके मूल्य क्रम से दश, पांच और ढाई रुपये होते थे, बराबर ढला करती थीं; परन्तु विशेष आज्ञा पा कर अन्य २३ प्रकार की मोहरे ढाली जाती थीं।

अध्याय १०

परिशिष्ट ।

(ऐतिहासिक पुस्तकें)

इतिहास की प्राचीन पुस्तकें जिनसे अकबर और उनके राज्य का हाल मालूम होता है, सब फ़ारसी भाषा में हैं और तत्सामयिक विद्वानों की लिखी हुई हैं। उनमें से लगभग सभी का अनुवाद अँगरेज़ी में हो गया है, और प्रायः उन्हीं की सहायता से आधुनिक इतिहास-ग्रन्थ लिखे गये हैं और लिखे जाते हैं। इनमें से अकबरनामा और आईन-अकबरी का संक्षिप्त वृत्तान्त अबुलफ़ज़्ल के वर्णन में अन्यत्र दिया गया है। अन्य ऐतिहासिक फ़ारसी ग्रन्थों का कुछ विवेचन नीचे दिया जाता है।

'तबक़ाते अकबरी' निज़ामुद्दीन अहमद बख़्शी कृत। इस पुस्तक की भाषा सरल है, और वृत्तान्त बहुत सच्चा है। वर्ण्य विषय भी बहुत हैं; परन्तु उसका संस्थापन क्रमपूर्वक नहीं है। इसका लेखक अकबर की शाही सेना में नौकर और अच्छा वीर योद्धा था। दक्षिण देश की बहुत सी लड़ाइयों में वह लड़ा।

'मुन्तख़बुल तवारीख़' या 'तारीख़ बदौनी' मुल्ला अब्दुल

कादिर बदौनी कृत । यह लेखक बड़ा कट्टर सुन्नी मुसलमान था. और यद्यपि अकबर बादशाह के यहाँ नौकर था, तथापि उनकी धर्मविषयक उदारता और सहनशीलता का पक्का विरोधी था । यह अपना इतिहास गुप्त रूप से अपने घर पर लिखता था और अकबर के जीवन समय तक उसका आविर्भाव नही किया । स्थान स्थान पर इसने अपने हृदय के सच्चे भावों को प्रकट किया है और अपनी संकीर्ण-हृदयता का परिचय दिया है । इसके दिल मे यह बात पूरे तौर से समाई हुई थी कि हिन्दू यथार्थ मे काफिर (नास्तिक) हैं और उनका उद्धार किसी प्रकार नही हो सकता । राना प्रताप की लडाई मे जो इसी लेखक के वर्णन के आधार पर लिखी गई है, बहुत सी बातें ऐसी मिलेंगी जिनसे हिन्दुओं पर अत्यन्त द्वेष प्रकट होता है । इसने लडाई के समय निश्चय कर लिया था कि राजपूत वीर, चाहे शत्रुपक्ष के हो या आत्मपक्ष के, वध-योग्य थे, क्योकि उनके मारने से धार्म्मिक फल मिलता था ।

अकबर के हिन्दू कर्म-चारियों को इसने दूसरे ही रङ्ग मे दिखलाया है । राजा टोडरमल ने घूँस और सरकारी रुपया खाजाने वालों का जो न्याय-युक्त शासन किया था उसके बारे मे बदौनी की राय है कि बहुत से 'सज्जन' कृच्छ्रदण्ड के कारण मर गये और बहुत से कारागार मे पड़ कर सड़ गये । लेखक ने उन लोगों की उपमा कामरूप की कामाख्या देवी के उन अनन्य भक्तो से दी है जो एक वर्ष तक ख़ूब खाते पीते और उड़ाते हैं,

और उसके पीछे देवी के रथ के पहिये से अपना शरीर कुचलवा कर मर जाते हैं।

बड़ा आश्चर्य मालूम होता है कि बदौनी कुछ संस्कृत भी जानता था और बादशाह की आज्ञा से महाभारत की कथा फ़ारसी में लिखने में नक़ीब ख़ां को उसने सहायता दी थी। महाभारत के बारे में उसने कहा कि "इसमें अठारह लोकों के उद्वेग करने वाली व्यर्थ और असम्भाव्य बातें भरी हैं"। बादशाह ने बदौनी की टालमटोल पसन्द न की और कहा कि वह 'हरामखुर' है।

बदौनी ने अकबर को भी अपने आक्षेपों से नहीं छोड़ा है, और जहां कहीं अवसर मिला है अपना उद्वेग प्रकट कर दिया है। परन्तु इन बातों से उसके इतिहास की उत्तमता में कोई ह्रास नहीं होता; विपरीत इसके बहुत सी सच्ची बातें ऐसी भी ज़ाहिर हो जाती हैं जिनको अबुल्फ़ज़्ल आदि ने नहीं लिखा। अगर अन्य पुस्तकों से लोगों के गुण मालूम होते हैं तो बदौनी के इतिहास से उनके दोष भी खुल जाते हैं; और इतिहास में गुण-दोष सभी होने चाहिएं।

'तारीख़ फ़रिश्ता' नामक एक प्रसिद्ध इतिहास और भी है जिसे मुहम्मद क़ासिम फ़रिश्ता ने लिखा था। यह शिया विद्वान् दक्षिण में रहता था और जब कि शाहज़ादा दानियाल के विवाह के लिए बीजापुर की सुल्तानाबेगम बुरहानपुर को राजसी ठाटबाट के साथ आई थी तो उसके साथ में फ़रिश्ता भी आया

था। अकवर के मरने के वाद वह उत्तरीय भारत मे भ्रमण करने गया था। इस लेखक की विद्या अच्छी और विचार स्वच्छ थे, इसकी भाषा सादी परन्तु बलशालिनी होती थी। इसने अपने समय से पहले की भी ऐतिहासिक पुस्तकों से सहायता ली थी। इसके लेखों का बड़ा प्रमाण माना जाता है।

तमाखू

तमाखू जिसका आज देश-देशान्तरों मे इतना रिवाज है हमारे भारतवर्ष की वस्तु नहीं। यह पहले अमरीका मे होती थी, वहाँ से यूरुप मे पहुँची; फिर अरब देश मे आई। धीरे धीरे इस देश मे भी इसका प्रवेश हुआ। इसके लाने वाले प्रायः पुर्तगीज़ लोग थे।

शाही दर्बार मे इसका प्रवेश इस भाँति हुआ कि असद ख़ाँ नामक एक अमीर को थोड़ी सी अच्छी तमाखू वीजापूर मे मिल गई: उसने तीन हाथ लम्बी जवाहिरात से शोभित एक नली वनवाई जिसके सिरे पर उत्तम निगाली थी। इस नली पर चाँदी का ख़ोल चढ़ा कर मख़मल से मढ़ दिया गया। सोने की चिलम वनाई गई। मणिजटित एक पात्र मे तमाखू भर कर, यह सब सामान एक चाँदी के तश्त पर सज्जित किया गया और बादशाह के सामने रक्खा गया। उन्हे इन अद्भुत वस्तुओं से बड़ा आश्चर्य हुआ। नवाब ख़ाने-आज़म ने सब रहस्य बताया जिस पर उन्होंने असद ख़ाँ को आज्ञा दी कि चिलम भर कर

उपस्थित करें । बादशाह ने तो दो तीन फूँकें पीं, जिससे उनको खाँसी आने लगी। प्रधान हकीम ने निषेध करके नली हाथ से छीन ली। तब अन्य अमीरों ने भी एक एक दो दो फूँकें खींचीं।

तब निघण्टु जानने वाले किसी हकीम से तमाखू के गुण-दोष पूछे गये; उसने कहा इस वनस्पति का वर्णन देशी पुस्तकों में नहीं है, परन्तु यूरुप के लोग इसे बहुत काम में लाते हैं। यह नई वस्तु है, इसलिए इसका प्रयोग सर्वथा अनुचित है। इस पर असदख़ाँ ने सप्रमाण सिद्ध किया कि यूरोपीय सभ्य जब तक किसी वस्तु का गुण अच्छे प्रकार नहीं जान लेते तब तक उसका प्रयोग नहीं करते; और नई वस्तु का सेवन न्याय-विरुद्ध नहीं, क्योंकि सृष्टि के आदि से सभी पदार्थ किसी न किसी समय नये रहे होंगे, परन्तु धीरे धीरे प्रचलित हो गये।

बादशाह का रुख़ पाकर किसी अन्य हकीम ने तमाखू की परीक्षा की और यह सिद्धान्त निकाला कि उसका धुवाँ नली के द्वारा पानी में लाया जावे, तो उसकी रुखाई दूर हो जाती है। इसी सिद्धान्त पर हुक्का बनाया गया जिस के मूल में पानी का एक पात्र रहता है। यद्यपि बादशाह ने दुबारा इस वनस्पति का सेवन नहीं किया, तथापि उनका रुख़ पाकर और अमीरों ने इसको धारण कर लिया।

धीरे धीरे हुक्का पीना अमीरी का एक लक्षण माना जाने लगा; इसी कारण छोटे लोग बड़ों के सामने इसका सेवन नहीं

करते थे। समय बीतने पर यह एक नियम सा हो गया कि तमाखू का सेवन अपने से बड़ों के सामने न किया जावे। यह प्रथा आज भी प्रचलित है।

मुसलमानों की देखादेखी हिन्दुओं ने भी हुक्का पीने की बान डाली, परन्तु ब्राह्मण लोग अपने कट्टरपन पर आरूढ़ रहे, अब भी कान्यकुब्ज और सरयूपारीण ब्राह्मण हुक्का सिगरेट आदि नहीं पीते, किन्तु पान के साथ या ख़ाली, चूने में मिला कर, तमाखू का प्रयोग करते हैं। निदान जो वस्तु पहले इतनी नवीन थी, उसके सेवन से आज कदाचित् कोई ही पुरुष, इस देश में क्या, पृथ्वी-मण्डल में बचा हो। सिक्ख लोग प्रायः इससे परहेज़ करते हैं।

—